m.facebook.com/Adhyatm yog
adhyatmyog9@gmail.com

मासिक

अध्यात्म संदेश

जनकल्याण एवं राष्ट्रोत्थान को समर्पित धर्म, संस्कृति, अध्यात्म चिंतन का मासिक पत्र

वर्ष:2 ।अंक:12 ।पृष्ठ:55 ।मूल्य:निःशुल्क ।इंदौर–उज्जैन ।शुक्रवार 1 जुलाई 2022 ।आषाढ़/श्रावण मास (5), विक्रम संवत् 2079 ।इ.संस्करण

08

03

12

15

24

प्रेरणा स्रोत
महासिद्ध गुरू गोरक्षनाथ जी

सलाहकार समिति
महंत बालक नाथ योगी जी
गद्दीनशीन महंत, मठ अस्थल बोहर, रोहतक
संसद सदस्य (लोकसभा), अलवर, राजस्थान
कुलाधिपति, श्री बाबा मस्तनाथ विश्वविद्यालय (हरियाणा)

महंत पीर योगी रामनाथ जी
भर्तृहरि गुफा, उज्जैन (मध्य प्रदेश)

महंत डॉ. योगी विलासनाथ जी
अध्यक्ष, श्री गुरू गोरक्षनाथ शिव पंचायतन मन्दिर (ट्रस्ट), गाळणे (महाराष्ट्र)

राष्ट्रसंत बालयोगी उमेशनाथ जी
पीठाधीश्वर–वाल्मीकि धाम, उज्जैन (मध्य प्रदेश)

प्रधान सम्पादक
योगी शिवनन्दन नाथ

सम्पादक मंडल

वरिष्ठ सम्पादक
डॉ. संतोष खन्ना (दिल्ली)

सम्पादक
डॉ. शकुंतला कालरा (दिल्ली)

सह सम्पादक
डॉ. दिग्विजय शर्मा (आगरा)

उपसम्पादक
सुश्री इंदु सिंह ''इन्दुश्री'' (मध्य प्रदेश)

ग्राफिक्स
IDEAwave COMMUNICATIONS

प्रकाशक एवं स्वामी
गोरक्ष शक्तिधाम सेवार्थ फ़ाउण्डेशन

- गोरक्ष शक्तिधाम सेवार्थ फाउंडेशन सर्वाधिकार सुरक्षित। किसी भी रूप में सामग्री की नकल प्रतिबंधित।
- पत्रिका में प्रकाशित सामग्री का समस्त उत्तरदायित्व लेखकों का है। प्रकाशक, प्रधान संपादक एवं संपादक मंडल इसके लिए किसी भी प्रकार से उत्तरदायित्व नहीं होंगे।
- समस्त विवादों का निस्तारण, मध्य प्रदेश सीमांतर्गत सक्षम न्यायालयों में किया जाएगा।

editor.adhyatmsandesh@gmail.com

मासिक
अध्यात्म संदेश
जनकल्याण एवं राष्ट्रोत्थान को समर्पित धर्म, संस्कृति, अध्यात्म चिंतन का मासिक ई–पत्र

प्रतिष्ठित लेखकों/लेखिकाओं को सादर नमन्!

अध्यात्म संदेश का आगामी **अंक 1 अगस्त** 2022 को प्रकाशित हो रहा है। आप सभी से ज्ञानवर्धक, किशोर उपयोगी, प्रकृति प्रेम, तकनीकी शिक्षा, पारिवारिक संस्कार, समाज सेवा, मेरी बेटी मेरा गौरव, छोटी बातें बड़े काम की, प्रेरक प्रसंग, मेरी अविस्मरणीय यात्रा, धर्म, संस्कृति, अध्यात्म पर आपके संस्मरण, कविताऐं, आलेख, लघुकथाऐं आमंत्रित हैं।

विशेष : शब्द सीमा 500–750 शब्दों के मध्य होनी चाहिए

आलेख भेजने की अंतिम तिथि 20 जुलाई 2022

विशेष:

1. लेखक/लेखिका अपनी रचना यूनिकोड/कृतिदेव – वर्ड फाइल में टाइप कराकर ही भेजे। पी. डी. एफ फाइल न भेजें।
2. लेखक/लेखिका अपनी स्वरचित अप्रकाशित एवं मौलिक रचना के साथ कृपया अपना संक्षिप्त परिचय, व्हाट्सप नंबर, फोटो के साथ भेजें ।
3. आपकी स्वीकृत रचना आपके फोटो के साथ प्रकाशित की जायेगी। प्रकाशित रचना पर पारिश्रमिक देय नहीं है।
4. जनकल्याण हित में ज्ञान वर्धन हेतु यह पूर्णतः निः शुल्क है। रचनाएँ ई–मेलः **editor.adhyatmsandesh@gmail.com** पर प्रेषित करें।

– योगी शिवनन्दन नाथ
प्रधान संपादक

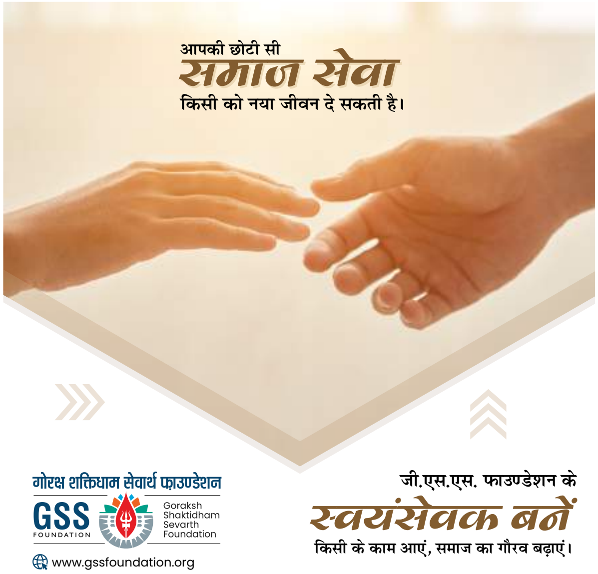

क्या श्री राम एक काल्पनिक चरित्र हैं ?

कई बार मन में प्रश्न उठते हैं कि क्या हम अपने पुरुखों द्वारा स्थापित परंपराओं का ही पालन करते हैं? क्या कभी हमने यह जानने का प्रयास किया है कि जिस मर्यादा पुरुषोत्तम राम की हम पूजा करते हैं वह चरित्र क्या कवियों की कल्पना मात्र है या फिर इसका कुछ ऐतिहासिक वजूद भी है ? 'संयोग से लगभग ऐसा ही प्रश्न उच्चतम न्यायालय में भी उठाया गया था।'

सतीश चंद्र रस्तोगी
पूर्व संयक्त सचिव, लोक सभा
नई दिल्ली

हम आम नागरिक तो इसे लकीर के फकीर की तरह ही पूजते आ रहे हैं पर कुछ ऐसे भी हैं जिन्होंने लकीर से हटकर उपलब्ध तथ्यों, नई तकनीकों का सहारा लेकर इस प्रश्न का प्रामाणिक व तर्कसंगत उत्तर खोजने का प्रयास किया है। इन्हीं में उल्लेखनीय हैं हैदराबाद स्थित (इंस्टीट्यूट ऑफ साइंटिफिक रिसर्च आन वेदास)। इस संस्था की स्थापना 21 जून, 2004 को डॉ. के.वी. कृष्णमूर्ति की अध्यक्षता में की गई थी। श्री आर वेंकटरमण, पूर्व राष्ट्रपति इसके मुख्य संरक्षक थे। इस संस्था का प्रमुख उद्देश्य भारत के प्राचीन वैज्ञानिक ज्ञान का आधुनिक वैज्ञानिक खोजों के साथ तालमेल बिठाना है। इसके उद्देश्यों में से एक है – उपलब्ध आधुनिक वैज्ञानिक तकनीकों के माध्यम से प्राचीन ग्रंथों में वर्णित घटनाओं की ऐतिहासिकता और प्रमाणिकता के बारे में शोध करना। इसी उद्देश्य की प्राप्ति के लिए इस संस्था की दिल्ली शाखा की निदेशक श्रीमती सरोज बाला, आईआरएस (आप केंद्रीय प्रत्यक्ष कर बोर्ड के सदस्य के पद से सेवानिवृत्त हुई हैं) के तत्वावधान में 30 व 31 जुलाई, 2011 को नई दिल्ली में एक सेमिनार का आयोजन किया गया था। इस सेमिनार में चर्चित विषय था वैदिक वा रामायण कालीन घटनाओं की ऐतिहासिकता। इस सेमिनार में विभिन्न विधाओं के 400 से अधिक विशेषज्ञों ने अपने तर्कसंगत विचार प्रमाणों के साथ प्रस्तुत किए थे। इसका उद्घाटन महान वैज्ञानिक भारत रत्न डॉक्टर एपीजे अब्दुल कलाम, भारत के पूर्व राष्ट्रपति ने किया था। इस सब का उल्लेख करने के पीछे मंशा यही है कि जो शोध की गई वह किसी धर्म भावना से प्रेरित होकर व्यक्तियों द्वारा नहीं, अपने अपने क्षेत्र के विशेषज्ञों द्वारा की गई।

इस संस्था ने विभिन्न विशेषज्ञों/संस्थानों के सहयोग से उपलब्ध साक्ष्यों और तथ्यों के आधार पर यह जानने का प्रयास किया कि क्या श्रीराम एक ऐतिहासिक चरित्र है? इसी संस्था के एक शोध दल के सदस्य श्री पुष्कर भटनागर आईआरएस ने अमेरिका से प्लेनेटोरियम गोल्ड नामक सॉफ्टवेयर मंगवाया था। यह सॉफ्टवेयर सूर्य व चंद्र ग्रहण की भविष्यवाणी करने के अतिरिक्त विभिन्न ग्रह नक्षत्रों की स्थिति व उनकी पृथ्वी से दूरी मापने के लिए भी प्रयोग किया जाता है ।

श्री पुष्कर भटनागर ने इस सॉफ्टवेयर की मदद से 'डेटिंग द इरा' नामक एक पुस्तक की रचना की है। हम सभी भारतीयों को इस बात पर गर्व होना चाहिए कि भारतीय सभ्यता का पिछले 10000 वर्षों से निरंतर क्रमिक विकास हो रहा है। इतना ही नहीं, ऋग्वेद में वर्णित खगोलीय स्थिति ईसा से 8000 से 4000 वर्ष पूर्व की खगोलीय स्थिति दर्शाती है।

महर्षि वाल्मीकि द्वारा रामायण की रचना श्री राम के जीवन काल में ही की गई थी । बाल्मीकि जी ने रामायण में मुख्य महत्वपूर्ण घटनाओं का वर्णन करते समय तत्समय ग्रह नक्षत्रों की जो स्थिति थी उसका उल्लेख किया है। बाल्मीकि रामायण में जो खगोलीय स्थिति वर्णित है वह 5100 ईसवी पूर्व की खगोलीय स्थिति से मेल खाती है ।

जब वाल्मीकि रामायण में उल्लिखित ग्रह नक्षत्रों की स्थिति का इस सॉफ्टवेयर से मिलान किया गया तो जो परिणाम निकले वे न केवल उत्साहवर्धक थे वरन् आश्चर्यजनक रूप से सत्य थे । इन परिणामों का जिक्र करने से पूर्व यह उल्लेखनीय है कि ग्रह नक्षत्रों की स्थिति की 25690 वर्षों में एक बार भी पुनरावृति नहीं होती ।

श्रीराम के जीवन से संबंधित विभिन्न घटनाओं के समय वाल्मीकि रामायण में वर्णित ग्रह नक्षत्र की स्थितियों का इस साफ़्टवेयर से मिलान करने पर इन सभी घटनाओं का सही तारीख आज के कैलेंडर के अनुसार निर्धारित करने में अभूतपूर्व सफलता मिली है। श्री राम के जन्म के समय ग्रह नक्षत्रों की स्थिति अयोध्या की भौगोलिक स्थिति (28° उत्तर 81° पू, को ध्यान में रखते हुए) उसके अनुसार 10 जनवरी, 5114 ई.पू. को चौत्र मास के शुक्ल पक्ष की नवमी थी और उसी दिन मध्यान्ह 12.10 पर राम का जन्म हुआ था।

सेमिनार के दौरान एक दीवार घड़ी जिसमें श्री राम के जन्म के समय की जगह नक्षत्रों की स्थिति दर्शाई गई है का विमोचन स्वर्गीय कलाम के द्वारा किया गया और पहली घड़ी दिवंगत पुष्कर जी की माता श्रीमती पुष्पा भटनागर को दी गई थी ।

महाराजा दशरथ ने जब श्रीराम को राज्य सौंपने का निर्णय लिया था तब जो ग्रह स्थिति थी वह 5 जनवरी, 5089 ई.पू.को उपलब्ध ग्रह नक्षत्रों की स्थिति से मेल खाती हैं। श्रीराम 25 वर्ष की आयु में 14 वर्ष के लिए वनवास गए थे ।

रामायण में खर दूषण वध के समय सूर्य ग्रहण होने का जिक्र था। पंचवटी की भौगोलिक स्थिति (20° उ. 73° पूर्व को) के अनुसार सूर्य ग्रहण 7 अक्टूबर, 5077 को पड़ा था। जब श्री राम ने बाली का वध किया था उस समय भी सूर्य ग्रहण 3 अप्रैल, 5076 को पड़ा था और यह उस वर्ष का एकमात्र सूर्य ग्रहण था।

जब श्री हनुमान अशोक वाटिका में सीता की खोज करते हैं उस दिन पूर्णिमा और चंद्र ग्रहण पड़ा था कि कोलंबो की भौगोलिक स्थिति (73° उ 80° पू) को यह चंद्र ग्रहण 12 सितंबर, 5076 ई. पू को पड़ा था।

पाठक आश्चर्य चकित रह जायेंगे जब वे पढ़ेंगे कि हनुमान जी ने लंका से अपनी वापसी यात्रा 14 सितंबर, 5076 ई.पू. की प्रातः 6.30 बजे प्रारम्भ की थी और उन्हें समुंद्र के मध्य स्थित सुनाम पर्वत तक की यात्रा में साढे 4 घंटे का समय लगा था। यह ग्रह नक्षत्रों की वह स्थिति बता रही है जो उनकी वापसी यात्रा के समय थी।

इस सॉफ्टवेयर में बाल्मीकि रामायण में वर्णित ग्रह नक्षत्रों की स्थिति के आधार पर रावण वध की तिथि 4 दिसंबर, 5070 ईसवी पूर्व निर्धारित की है। श्रीराम जी की 14 वर्ष की वनवास की अवधि क्षेत्र मास के शुक्ल पक्ष की नवमी तिथि को समाप्त हुई इस सश्वफ्टवेयर के अनुसार यह तिथि 2 जनवरी, 5075 ईसवी पूर्व थी जब श्री राम वनवास की अवधि को पूरा कर अयोध्या लौटे तब वह 39 वर्ष के हो चुके थे।

इस संस्था के एक शोधार्थी दल ने अयोध्या से श्रीलंका तक की यात्रा उसी मार्ग से की जिस मार्ग से श्री राम बन गए थे । इस दल के सदस्यों को आश्चर्य हुआ कि पूरे यात्रा मार्ग और स्थलों में आज भी वही वृक्ष, पौधे, पशु पक्षी आदि पाए जाते हैं जिनका वाल्मीकि रामायण में उल्लेख है ।इतना ही नहीं, इस दल ने यात्रा मार्ग में 249 ऐसे स्थान पाए जो श्रीराम के जीवन से जुड़ी घटनाओं के प्रमाण हैं स्मारक हैं। अतः इस शोध से निर्विवाद रूप से यह सिद्ध हो गया है कि श्री राम किसी कल्पना कवि की कल्पना मात्र नहीं, वरन् वह एक ऐतिहासिक चरित्र हैं व्यक्तित्व हैं जो आज से लगभग 7000 वर्ष पूर्व 10 जनवरी, 5114 को इस धरा पर अवतरित हुए थे।

(इस आलेख में प्रयुक्त सामग्री हिस्टोरिसिटी ऑफ वैदिक एंड रामायण इरास (Historicity of Vedic and Ramayana Eras) से श्रीमती सरोज बाला की पूर्व अनुमति से ली गई है उनका हार्दिक आभार)

गोरक्ष शक्तिधाम सेवार्थ फ़ाउण्डेशन

द्वारा

21 जून 2022 अंतर्राष्ट्रीय योग दिवस

पर मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश एवं छत्तीसगढ़ में विशाल योग शिविर का आयोजन।

केंद्रीय भेरूगढ़ जेल, उज्जैन (मध्य प्रदेश), जिला कारागार मुजफ्फरनगर (उ. प्र.), में बंदीजनों एवं शासकीय बालिका गृह, जिला बिलासपुर (छत्तीसगढ़) में बालिकाओं को फाउंडेशन के प्रशिक्षित योगाचार्यो द्वारा योग प्रशिक्षण प्रदान किया गया। विभिन्न प्रदेशों में आयोजित इन योग शिविरों में बंदी जनों को उनके शारीरिक, मानसिक, नैतिक, आध्यात्मिक एवं सामाजिक विकास के निर्माण में योग के महत्व पर प्रकाश डाला गया। फाउंडेशन द्वारा उपरोक्त तीनों प्रदेशों में आयोजित योग शिविरों में कार्यक्रम का शुभारंभ, मुख्य अतिथि, विशिष्ट अतिथि एवं फाउंडेशन के अधिकारियों द्वारा योग प्रणेता महायोगी गोरक्षनाथ जी के चित्र पर माल्यार्पण एवं दीप प्रज्वलित कर किया गया।

उज्जैन, मध्य प्रदेश | 18 से 21 जून

गोरक्ष शक्तिधाम सेवार्थ फाउंडेशन द्वारा आयोजित मध्य प्रदेश की केंद्रीय जेल भेरूगढ़ उज्जैन के योग शिविर के मुख्य अतिथि भरतरी गुफा उज्जैन के महंत पीर योगी राम नाथ जी महाराज एवं वाल्मीकि धाम के पीठाधीश्वर बाल योगी उमेश नाथ जी महाराज, विशेष अतिथि न्यायाधीश श्री अरविंद कुमार जैन, जिला विधिक सेवा प्राधिकरण, का फाउंडेशन के संस्थापक ,चेयरमैन योगी शिवनंदन नाथ जी एवं जिला अध्यक्ष डॉ. प्रवीण जोशी जी व फाउंडेशन के अधिकारियों द्वारा माल्यार्पण एवं बुके देकर स्वागत किया गया। अपने विशिष्ट उदबोधन में बाल योगी उमेश नाथ जी ने कहा कि सारा देश आध्यात्मिकता से बिछड़ कर पाश्चात्य सभ्यता की ओर दौड़ रहा है ऐसे में आज अंतर्राष्ट्रीय योग दिवस है हम केवल योग के 10 नियमों का पालन और 84 आसनों में से केवल पांच आसनों को भी अगर रोज अपने जीवन में शामिल कर लें तो विभिन्न बीमारियों से मुक्ति मिल सकती है। **योग कर्मशु कौशलम्** के शब्द को आत्मसात करें इसी में मानवीय जीवन की सार्थकता है।

योगी शिवनंदन नाथ जी ने अपने अध्यक्षीय उदबोधन में योग की महत्ता पर बल देते हुए कहा कि योग हमारे दैनिक जीवन में नियमित आवश्यक है, योग से शारीरिक स्वास्थ्य एवं प्राणायाम से मानसिक स्वास्थ्य को बल मिलता है। उन्होंने बताया कि यम, नियम, आसन, प्राणायाम, मुद्राबंध, षटकर्म, कुंभक, हठयोग विद्या, महा मुद्राएं, कुंडलिनी महाशक्ति साधना, नादानुसंधान, ध्यान समाधि इत्यादि अनेक विद्याएं नाथ संप्रदाय के संस्थापक महा सिद्ध महायोगी गुरु गोरक्षनाथ जी की ही देन है। योगी शिवनंदन नाथ जी ने उज्जैन कारागार के समस्त बंधुओं को उनके समस्त कल्याण एवं मानसिक शांति के लिए गुरु गोरक्षनाथ जी का बीज मंत्र प्रदान किया। योग शिविर के आयोजन में जेल अधीक्षक उषा राजे जी का विशेष सहयोग रहा। चार दिवसीय योग कार्यक्रम की सफलता एवं बंदी जनों द्वारा मनोयोग से प्रशिक्षण प्राप्त करने पर जेल अधीक्षक उषा राजे जी ने समस्त कैदियों की 3 दिन की सजा माफ करने की घोषणा की।

गोरक्ष शक्तिधाम सेवार्थ फ़ाउण्डेशन

द्वारा

21 जून 2022 अंतर्राष्ट्रीय योग दिवस

पर मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश एवं छत्तीसगढ़ में विशाल योग शिविर का आयोजन।

मुजफ्फर नगर उत्तर प्रदेश

उत्तर प्रदेश के मुजफ्फरनगर जिला कारागार योग शिविर के मुख्य अतिथि श्री प्रशांत जी एजीएम, विशिष्ट अतिथि श्री मयंक जायसवाल सचिव विधिक सेवा प्राधिकरण का फाउंडेशन के जिला अध्यक्ष श्री पंकज त्यागी एवं फाउंडेशन के जिला अधिकारियों द्वारा माल्यार्पण एवं बुके देकर स्वागत किया गया। योग शिविर के आयोजन में जेल अधीक्षक सीताराम शर्मा जी एवं जेलर कमलेश कुमार जी विशेष सहयोग रहा।

गोरक्ष शक्तिधाम सेवार्थ फाउण्डेशन
www.gssfoundation.org
editor.adhyatmsandesh@gmail.com
m.facebook.com/अध्यात्म संदेश
मासिक
अध्यात्म संदेश
जनकल्याण एवं राष्ट्रोत्थान को समर्पित धर्म, संस्कृति, अध्यात्म चिंतन का मासिक ई–पत्र

गोरक्ष शक्तिधाम सेवार्थ फ़ाउण्डेशन

द्वारा

21 जून 2022 अंतर्राष्ट्रीय योग दिवस

पर मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश एवं छत्तीसगढ़ में विशाल योग शिविर का आयोजन।

बिलासपुर, छत्तीसगढ़

छत्तीसगढ़के जिला बिलासपुर के शासकीय बालिका गृह में गोरक्ष शक्तिधाम सेवार्थ फाउंडेशन की ओर से एक दिवसीय योग प्रशिक्षण शिविर का आयोजन किया गया।

कार्यक्रम के मुख्य अतिथि जिला बाल संरक्षण अधिकारी पार्वती वर्मा एवं अलका लकड़ा, सामाजिक कार्यकर्ता (नोडल इंचार्ज) का फाउंडेशन की जिला उपाध्यक्ष मांडवी नामदेव एवं उपस्थित समस्त फाउंडेशन अधिकारियों ने स्वागत किया।

फाउंडेशन की प्रशिक्षित योग गुरु शशिकिरण साहू ने बालिकाओं को प्रशिक्षण के दौरान बताया की कैसे नियमित योगाभ्यास से हम अपने अंदर सकारात्मक भाव एवं ऊर्जा का निर्माण कर सकते हैं ।योग हमें समाज के प्रति जिम्मेदार नागरिक बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करता है। योग के निरंतर अभ्यास से हम शारीरिक एवं मानसिक विकारों को दूर कर सकते हैं ।योग को दैनिक दिनचर्या का हिस्सा बनाना ही हमारे इस कार्यक्रम का मुख्य उद्देश्य है।योग शिविर के सफल आयोजन में फाउंडेशन की जिला अध्यक्ष डॉ. अलका यादव, जिला सचिव मोना केवट, एवं सभी जिला कार्यकारणी के अधिकारियों का विशेष सहयोग रहा।

तीनों प्रदेशों में अंतर्राष्ट्रीय योग शिविर के सफल आयोजन के लिए फाउंडेशन के संस्थापक एवं चेयरमैन योगी शिवनंदन नाथ जी की ओर से तीनों प्रदेशों के जिला अध्यक्षों सर्वश्री डॉ. प्रवीण जोशी (उज्जैन), श्री पंकज त्यागी (मुजफ्फरनगर), डॉ. अलका यादव (बिलासपुर) एवं उनकी टीम को हार्दिक शुभकामनाएं ! आप सभी के अथक परिश्रम के परिणाम स्वरूप यह सफल आयोजन संपन्न हुआ।

वन महोत्सव

पेड़ पौधों के संरक्षण एवं संवर्धन का प्रयास

"धरती के तापमान में वृद्धि हो रही है, पहाड़ों पर बरफ पिघलने लगे हैं। बाढ़ और सूखे की विषम स्थितियों से हमें जूझना पड़ रहा है। नदियों का जल दूषित हो रहा है, वायुमंडल में कार्बन डाइऑक्साइड गैस की मात्रा बढ़ रही है, पर्याप्त वनों के अभाव में हमें प्रदूषित वायु में साँस लेना पड़ रहा है। इसके दुष्परिणामों से जीव जंतुओं का प्राकृतिक आवास विकास की भेंट चढ़ चुका है।"

सुजाता प्रसाद

लेखिका,
शिक्षिका सनराइज एकेडमी
मोटिवेशनल ओरेटर
नई दिल्ली

हर साल भारत सरकार जुलाई के प्रथम सप्ताह में सम्पूर्ण देश में विस्तृत तरीके से वन महोत्सव का आयोजन करती है, जिसमें पेड़ पौधों के संरक्षण एवं संवर्धन का प्रयास किया जाता है। प्रतिवर्ष 5 जून को विश्व पर्यावरण दिवस मनाया जाता है और 1 जुलाई से 7 जुलाई के मध्य भारत में वन महोत्सव मनाया जाता है। वन महोत्सव प्राकृतिक संतुलन को बनाए रखने की कोशिश और जागरूकता बनाए रखने का प्रयोजन है। हमारे यहां पारिवारिक, सामाजिक, धार्मिक एवं राष्ट्रीय उत्सव मनाने की परंपरा रही है। वन महोत्सव को हम मानवता के उत्सव के रूप में मनाते हैं। क्योंकि अपने फायदे के लिए मानवीय कृत्यों द्वारा की गई गुस्ताखियों से, की गई अनेक गलतियों से पेड़ पौधों की संख्या लगातार घटती चली गई। हमारा पर्यावरण खतरों से घिर गया जिसका कुप्रभाव मनुष्यों को भुगतना पड़ रहा है।

वन महोत्सव हमें प्रकृति के करीब लाने का प्रयास करता है ताकि हम जागरूक हो सकें। अपनी धरती को हरा–भरा करने की दिशा में कार्य कर सकें। पेड़ पौधे हमारे लिए कितने कल्याणकारी हैं यह जान सकें। ये पेड़ पौधे पृथ्वी के सभी जीव जंतुओं के लिए सच्चे मित्र से कम नहीं हैं, यह मान सकें। मानसून में आई बारिश के पानी को रोकने में पेड़ पौधे महत्वपूर्ण भूमिका निभाते आए हैं। इनकी जड़ों में मिट्टी को बांधे रखने की क्षमता होती है और मिट्टी में पानी संचित करने की क्षमता होती है। ये मृदा क्षरण रोकते हैं। ये रेगिस्तानों को बनने और उसके विस्तार को रोकते हैं इसके अलावा ये पेड़ पौधे धरती पर वर्षा लाने का कारक भी बनते हैं। जिस तरह जलचक्र की प्रक्रिया में सूर्य किरणें विभिन्न जल स्रोतों जैसे सरोवर, नदी, सागर से जलकणों को अवशोषित कर वर्षा का कारण बना करती हैं, वही कार्य यह पेड़–पौधे भी किया करते हैं। पेड़–पौधे वर्षा का कारण बन कर विषैली गैसों का अवशोषण करके पर्यावरण की रक्षा करते हैं।

मानसून में पौधों की बहुतायत होती है। पौधों के नर्सरी भी विभिन्न प्रजातियों के पौधों से भरे पूरे होते हैं।

मानसून के आगमन के बाद जुलाई माह के प्रथम सप्ताह में 'वन महोत्सव सप्ताह' मनाया जाता है। जगह–जगह वृक्षारोपण कार्यक्रम आयोजित किए जाते हैं। लेकिन यह सोचना भी जरूरी है कि भविष्य में इनमें से कितने पौधे, पेड़ बन पाते हैं? यानी इनके विकसित होने की प्रक्रिया हो भी पाती है या नहीं। मानसून की बारिश तक तो प्राकृतिक रूप से इन पौधों में सींचन हो जाता है लेकिन उसके बाद हर जगह इनकी देखभाल हो पाती है या नहीं? वृक्षारोपण कार्यक्रम को सफल बनाने के लिए इसकी निगरानी भी बहुत आवश्यक है। ऐसे में नवरोपण के लाभ से हम वंचित रह जाते हैं और वृक्षारोपण कार्यक्रम महज एक औपचारिकता भर रह जाता है। क्योंकि अधिकांश पौधे रोपण के बाद जल के अभाव में सूख जाते हैं। अक्सर उनके चारों ओर सुरक्षा घेरा नहीं बना होने के कारण वे शाकाहारी पशु के भोजन का ग्रास बन जाते हैं। पृथ्वी की हरीतिमा महज कुछ कार्यक्रमों और सिर्फ कागजों तक सीमित रह जाती है। इसलिए जब तक वृक्षों का संरक्षण नहीं हो पाएगा तो इसके संवर्धन की कल्पना कैसे की जा सकती है?

वन विभाग और विशेषज्ञों के अनुसार किसी भी क्षेत्र विशेष के लिए उस क्षेत्र का एक तिहाई हिस्सा वृक्षों से आच्छादित होना चाहिए, तभी उसे पेड़ पौधों की दृष्टि से आदर्श क्षेत्र का दर्जा मिल पाता है। इसके लिए शहर शहर सड़कों और नदियों के किनारे कदम कदम पर वृक्ष लगाना कितना सुंदर और लाभदायक प्रयास होगा, यह समझने की जरूरत है। साथ ही घने वन की संकल्पना करना और उसे सुचारू रूप से क्रियान्वित करना अत्यंत विचारणीय है। क्योंकि वनस्पतियों के संरक्षण से हमारा ही संरक्षण होगा। जंतु जीव जगत का अस्तित्व पादप जीव जगत के अस्तित्व से ही तो जुड़ा है। पौधे हमसे कार्बन– डाई– ऑक्साइड लेते हैं और प्राण वायु ऑक्सीजन के रूप में हमें अमृत देते हैं। हमारे स्वास्थ्य के लिए हानिकारक विषैले गैस कार्बन डाइऑक्साइड का शोषण करते हैं। इतना ही नहीं पर्यावरण में उपस्थित अन्य घातक गैसों का पोषण भी करते हैं। कल– कारखानों से उठते धुएं और अन्य विषैली गैसें पर्यावरण में फैल जाते हैं । पेड़– पौधे उन विषैली गैसों को तो वायुमण्डल और वातावरण में घुलने से रोक कर पर्यावरण को प्रदूषित होने से बचाया करते हैं। साथ ही कल कारखानों से उठे धूल, राख और रेत आदि के कणों को भी ऊपर जाने से रोकते हैं। सच है कि हमारा जीवन अपने आप में कोई अलग अस्तित्व नहीं है। हम सभी इस प्रकृति के अनन्य हिस्से हैं। क्योंकि जो सांस हम छोड़ते हैं उसे पेड़ अपने अंदर लेते हैं। जो पेड़ बाहर छोड़ते हैं उसे हम अंदर लेते हैं। स्पष्ट है कि श्वास निःश्वास की प्रक्रिया सिर्फ हमारे फेफड़ों से ही संचालित नहीं हो रही है, इसमें पेड़ पौधे भी अपने फेफड़ों के साथ तालमेल बिठाते हैं, तभी श्वसन की क्रिया संपन्न होती है।

वृक्षों की कटाई के कारण परिणाम स्वरूप बदले में हमें बाढ़, सूखा, प्रदूषण का सामना करना पड़ रहा है।

धरती के तापमान में वृद्धि हो रही है, पहाड़ों पर बरफ पिघलने लगे हैं। बाढ़ और सूखे की विषम स्थितियों से हमें जूझना पड़ रहा है। नदियों का जल दूषित हो रहा है, वायुमंडल में कार्बन डाइऑक्साइड गैस की मात्रा बढ़ रही है, पर्याप्त वनों के अभाव में हमें प्रदूषित वायु में साँस लेना पड़ रहा है। इसके दुष्परिणामों से जीव जंतुओं का प्राकृतिक आवास विकास की भेंट चढ़ चुका है ऋषि के लायक भूमि का विस्तार वनों की कटाई की कीमत पर उपलब्ध होने लगा। औद्योगिक विकास और जनसंख्या वृद्धि के कारण पर्यावरण की समस्या गंभीर और गंभीर होती गई। अगर हम 'जल ही जीवन' कहते हैं तो इस कथन का अंतर संबंध वृक्षों से भी है। क्योंकि पेड़ पौधों से बारिश का पानी मिलता है, इस पानी से अन्न उपजाए जाते हैं, जो हमारे जीवन की अनिवार्य आवश्यकता हैं, इसलिए वृक्ष भी जीवन का ही प्रतीक हैं। भारत जैसे देश में वनस्पतियों के महत्व को हमेशा से उच्च स्थान दिया गया है। जागरूक वर्ग हमेशा अपना सहयोग देते रहे हैं। इनकी उपयोगिता को जन जन के मन में स्थापित करने के लिए पेड़ों को पूजने की परंपरा सदियों से चली आ रही है। आयुर्वेद के अनुसार वनस्पतियों से बने औषधियों से मानव तन को स्वस्थ एवं दीर्घायु किया जा सकता है और ऐसा हो भी रहा है।

इसलिए विकास के दौर में हमारी आवश्यकताओं के अनुरूप ही वृक्षों की कटाई के नियम बनाया जाएं। साथ–साथ हमारा भी यह कर्तव्य बनता है कि अधिकांश तौर पर सूखे वृक्ष ही काटे जाएं और एक कटे पेड़ के बदले दो पेड़ लगाए जाएँ और उनकी उचित देखभाल भी व्यवस्था हो। प्रकृति का भी यह मौन संदेश है कि अब मनुष्य को प्राकृतिक–संसाधनों और अपनी जरूरतों के बीच संतुलन बना कर जीवन जीने की कला सीख लेने में ही भलाई है। मनुष्य विकास की राह पर आगे और आगे बढ़ते रहने के लिए आंखें मूंद कर पेड़ों की अन्धाधुंध कटाई पर जोर दे रहा है। पर्वतों पर पेड़ पौधों की कटाई पर्वतीय क्षेत्रों को विरान बना रही है। प्रदूषण का ग्राफ बढ़ता जा रहा है और जीवन की रफ्तार घटती जा रही। खतरे में पड़ी मानवता की सुरक्षा के लिए क्या प्रकृति का इतना इशारा काफी नहीं है कि हम अपने जीव मंडल को बचाएं। हमें पेड़–पौधों की रक्षा और उनके नवरोपण आदि की ओर प्राथमिक स्तर पर ध्यान देना चाहिए। यदि हम चाहते हैं कि धरती हरी–भरी रहे, नदियाँ अमृत जल धारा बहाती रहें और सबसे बढ़कर मानवता की रक्षा संभव हो सके, तो हमें पेड़–पौधे उगाने, उन्हें संवर्धित और संरक्षित करने की पहल जरुर करना चाहिए।

महाकाली मंदिर पावागढ़ से जुड़े तथ्य

पंडित कैलाशनारायण
ज्योतिषाचार्य
उज्जैन, मध्य प्रदेश

वड़ोदरा शहर से 50 किलोमीटर दूर गुजरात की प्राचीन राजधानी चांपानेर के पास पावागढ़ में स्थित प्राचीन महाकाली का मंदिर माता के शक्तिपीठों में से एक है। शक्तिपीठ उन पूजा स्थलों को कहा जाता है, जहां सती के अंग गिरे थे।

कहा जाता है कि सती के दाहिने पैर का अंगूठा यहीं गिरा था, जिसके कारण इस जगह का नाम पावागढ़ पड़ा इसीलिए यह स्थल अत्यंत पूजनीय और पवित्र माना जाता है।

पावागढ़ का पौराणिक और ऐतिहासिक महत्त्व भी है। यह मंदिर श्रीराम के समय का है। ऐसी मान्यता है कि भगवान राम, उनके बेटे लव और कुश के अलावा बहुत से बौद्ध भिक्षुओं ने यहां मोक्ष प्राप्त किया था।

श्रद्धालु रोप–वे लेकर पावागढ़ पहाड़ी के ऊपरी हिस्से तक पहुंच सकते हैं। रोप–वे से उतरने के बाद आपको लगभग 250 सीढ़ियां चढ़ना होंगी, तब जाकर आप मंदिर के मुख्य द्वार तक पहुंच सकेंगे।

कहा जाता है कि गुरु विश्वामित्र ने यहां काली मां की तपस्या की थी। यह भी माना जाता है कि काली मां की मूर्ति को विश्वामित्र ने ही प्रतिष्ठित किया था। यहां बहने वाली नदी का नाम उन्हीं के नाम पर 'विश्वामित्री' पड़ा है।

ओम् जयन्ती मँगला काली भद्रकाली कपालीनी दुर्गा क्षमा शिवा धात्री स्वाहा स्वधा नमोस्तुते

जय मां महाकाली पावागढ़

सोचिए देश को अबतक पता ही नही था कि हिंदुओं की आस्था के सर्वोच्च स्थलों में से एक पावागढ़ कालिका मंदिर के पुराने मुख्य मंदिर के शिखर पर ध्वजा नही फहराई जा सकती थी क्योंकि वहां पर एक दरगाह थी. जिसे 500 वर्ष पूर्व आक्रांता महमूद बागड़ा ने मंदिर तोड़कर बनाया था।

पांच सदियां और आजादी के 75 वर्ष बीत गए लेकिन हिन्दू आस्था के सर्वोच्च स्थल जहां मंदिर में नित्य पूजा हो रही है नवरात्रि में लाखों की भीड़ आ रही है लेकिन मंदिर के शिखर पर ध्वजा नही फहराई जा सकती।

'पावागढ़ वाली मैया मोरी कृपा करो महाकाली रे' भजन हम बचपन से सुनते आ रहे है लेकिन सोचिए बचपन से ही हम जिस गंगा जमुनी तहजीब दरिया में डुबकी लगाते रहे, धर्मनिरपेक्षता की भांग खाकर हरे रंग से सरोबार होते रहे, सबधर्म समभाव के तराने गाते रहे उसने हमें क्या दिया ??

राममंदिर भूमिपूजन, काशी कॉरिडोर के बाद विश्वप्रसिद्ध अतिप्राचीन पावागढ़ मंदिर में 500 वर्ष बाद ध्वजा फहराने का सौभाग्य भी प्रधानमंत्री मोदी को मिला..

नोटः नया मंदिर नही बनाया है पहले से बने मंदिर के शिखर पर ध्वजा फहराई है।

शिखर ध्वज केवल आस्था और अध्यात्म का ही प्रतीक नहीं है। शिखर ध्वज इस बात का भी प्रतीक है कि सदियाँ बदलती हैं, युग बदलते हैं, लेकिन आस्था का शिखर शाश्वत रहता है।

यहां पर ऋषि विश्वामित्र ने माता काली की कठोर तपस्या की थी। पावागढ़ की ऊंचाई समुद्र तल से करीब 762 मीटर है। शक्तिपीठ तक पहुंचने के लिए रोपवे और सीढ़ी, दोनों की सुविधा उपलब्ध है। यहां प्रतिवर्ष माघ महीने के शुक्ल पक्ष त्रयोदशी को भव्य मेले का आयोजन होता है। कहा जाता है कि यहां लव और कुश ने मोक्ष की प्राप्ति की थी। पावागढ़ जैन संप्रदाय के लिए भी काफी महत्व रखता है।

वैश्विक संस्था यूनेस्को ने सन् 2004 में विश्व धरोहर की सूची में शामिल किया था।

श्री राम है देश का अभिमान

डॉ अनीता पंडा 'अन्वी'
शिलांग, मेघालय

श्री राम है देश का अभिमान,
उनसे बना स्वर्णिम इतिहास।

माता–पिता का आदर करते,
गुरु वशिष्ठ की सेवा में रहते,
राजर्षि विश्वामित्र के साथ गए,
ताड़का राक्षसी का वध किया ।

श्री राम है देश का अभिमान,
उनसे बना स्वर्णिम इतिहास।

तीव्र बुध्दि, विनम्र स्वभाव,
दृढ़ संकल्प, सदा रखे सेवा भाव,
वीर धनुर्धर ,रक्षक धर्म यज्ञ,
पाते आशीष, भयभीत राक्षस।

श्री राम है देश का अभिमान,
उनसे बना स्वर्णिम इतिहास।

तोड़ शिव–धनु, जानकी संग विवाह किया,
मान पिता की आज्ञा,चौदह वर्ष वनवास किया,
मार खर–दूषण, मारीचादि वन को मुक्त किया,
देख राम की शूर–वीरता दशानन भयभीत हुआ,
कायर कदम उठा उसने सीता का हरण किया ।

श्री राम है देश का अभिमान,
उनसे बना स्वर्णिम इतिहास।

खोज सीता ने रचा एक इतिहास,
सुग्रीव से मित्रता, हनुमान से भेंट,
अन्यायी बालि–वध, सुग्रीव को राज,
वानर–रीछ की मित्रता, हनुमान से लंका दहन ।

श्री राम है देश का अभिमान,
उनसे बना स्वर्णिम इतिहास।

सेतुबन्ध रामेश्वरम्, पूजित शिव राम,
शक्ति अर्पित कमलनयन श्री राम,
विध्वंस अधर्म का धर्ममय रथ पर राम,
हटा तिमिर, फैलाया रामराज्य का प्रकाश।

श्री राम है देश का अभिमान,
उनसे बना स्वर्णिम इतिहास।

युवाओं के सपनों को पंख देती तकनीकी शिक्षा

तकनीकी शिक्षा संपन्न व्यक्ति स्वयं तो उन्नति करता ही है साथ साथ अपने समाज और राष्ट्र की उन्नति कर राष्ट्रीय एकता एवं विश्व बंधुत्व का साधन भी बन जाता है। कला कौशल, वाणिज्य, व्यवसाय तथा तकनीकी इंजीनियरिंग की दृष्टि से विकसित राष्ट्र सहज ही आधुनिक विश्व के मंच पर महत्व पूर्ण प्रतिष्ठा प्राप्त करते हैं। यही कारण है कि तकनीकी शिक्षा किसी भी राष्ट्र के लिए बहुत ही महत्वपूर्ण स्थान रखती है।

श्रीमती सुषमा सागर मिश्रा

सेवानिवृत प्रधानाचार्या
राजकीय बालिका विद्यालय
लखनऊ

हमारा देश प्राचीन काल से ही गणित, विज्ञान, चिकित्सा ,ललित कला, खगोल विज्ञान एवं ज्योतिष विज्ञान आदि के क्षेत्रों में सदैव अग्रणी एवं उन्नत रहा है। उस समय भी भारत तकनीकी क्षेत्र में आत्मनिर्भर होकर विश्व गुरु के रूप में विश्व का नेतृत्व करता था। भारत विश्व को गिनती सिखाने से लेकर दुनिया का सर्वोत्तम स्टील बनाकर सदियों पूर्व से विज्ञान एवं तकनीकी क्षेत्र में सक्रिय योगदान देता रहा है।

ज्ञान आधारित अर्थव्यवस्था के वर्तमान युग में देश के सामाजिक, आर्थिक, एवं औद्योगिक विकास हेतु तकनीकी शिक्षा का महत्वपूर्ण स्थान है। यह शिक्षा सामान्य रूप से देश के मानव संसाधन विकास के लिए विभिन्न प्रकार की जनशक्ति उपलब्ध कराती है। विज्ञान एवं तकनीकी के क्षेत्र में होने वाले नये नये अविष्कारों ने आमजन के दैनिक जीवन को आधुनिक, सुगम और सरल बना दिया है। तकनीकी शिक्षा एक विशिष्ट प्रकार का शैक्षिक स्वरुप है जिसका व्यक्ति एवं समाज के साथ अभिन्न समन्वय होता है। तकनीकी शिक्षा व्यवहारिक ज्ञान एवं कौशल प्रदान करती है यह किसी भी शिक्षार्थी की विशेष वृति के समन्वय में ज्ञान एवं कुशलता अर्जित करने में सहायक होती है साथ ही पूर्व संग्रहित एवं नव अर्जित दक्षता का प्रयोग कर उस वृति को सुंदर ढंग से सम्पन्न करने में सक्षम होती है। किसी भी व्यवस्था के सफल संचालन हेतु ज्ञान, कौशल एवं अभिवृत्तियों की शिक्षा देना ही तकनीक शिक्षा कहलाती है यह शिक्षा परंपरागत शिक्षा से नितान्त अलग है, यह शिक्षा छात्रों को कृषि, कंप्यूटर, इंजीनियरिंग, चिकित्सा एवं ड्राइविंग आदि के क्षेत्र में कुशल बनाती है जिसके परिणाम स्वरूप योग्य कृषक, दक्ष इन्जीनियर, कुशल डाक्टर एवं प्रशिक्षित पायलट देश को मिलते हैं।

आज हमारा भारत विकास की ओर अग्रसर है वर्तमान में आमजन भी विद्युत, आवास, एवं अन्य सुविधाओं का उपभोग कर रहा है। ऊंचे–ऊंचे भवन, चमचमाती सड़कें ,जगह–जगह फ्लाईओवर एवं नदियों पर बने बड़े बड़े पुल जो जीवन को सुगम और सरल बनाते हैं तकनीकी शिक्षा की ही देन है। सच तो यह है कि देश के विकास का मार्ग तकनीकी शिक्षा से होकर ही जाता है, जिस देश की तकनीकी शिक्षा जितनी ही उन्नत होगी वह देश भी उतना ही उन्नति कर सकेगा। तकनीकी शिक्षा के माध्यम से देश के युवाओं को प्रशिक्षण देकर उन्हें हुनरमंद बनाया जा रहा है और देश के इंजीनियरिंग कॉलेज अपनी इस जिम्मेदारी को बखूबी निभा रहे हैं इन तकनीकी संस्थानों से निकले हुआ दक्ष इंजीनियर देश के विकास में अपना योगदान दे रहे हैं।

तकनीकी शिक्षा की विशेषता यह है कि इसका आधार मनोवैज्ञानिक है यह शिक्षार्थी की प्रवृत्तियों, रुचियों एवं व्यक्तित्व का ध्यान रखती है। यह शिक्षा जीवन में शिक्षा, परिवार, श्रम एवं कार्य के महत्व को उजागर करती है ।इस शिक्षा का पाठ्यक्रम समय के साथ एवं सभ्यता के विकास के अनुरूप परिवर्तित होता रहता है।

तकनीकी शिक्षा प्राप्त करने में कुछ समस्याएं भी आती हैं जिनका समाधान बहुत जरूरी है तभी इस शिक्षा का उद्देश्य पूरा हो पायगा।आज के भौतिकवादी समय में समाज में केवल धन की महत्ता सर्वोपरि है उसके मुकाबले में शारीरिक श्रम को हेय दृष्टि से देखा जाता है अतः आवश्यक है कि हम सब शारीरिक एवं मानसिक दोनों श्रम को सम्मान से देखें क्योंकि श्रम से ही धन प्राप्त हो सकता है, साथ ही अपने दृष्टिकोण में परिवर्तन लाने का प्रयास करना होगा। भारत हिंदी भाषी देश होने के कारण यहां पर हिंदी बोलने वाले बाहुल्य में हैं परन्तु तकनीकी शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी होने के कारण विद्यार्थियों को विषय ज्ञान प्राप्त करने में अति कठिनाई का सामना करना पड़ता है इसके लिए आवश्यक है कि तकनीकी शिक्षा का माध्यम राष्ट्रीय भाषा एवं मातृभाषा भी होना चाहिए जिससे विषय पर उनकी पकड़ और भी मजबूत बन सके। ऐसा माना जाता है कि तकनीकी शिक्षा ग्रहण करने वाले शिक्षार्थियों का दृष्टिकोण भौतिकवादी हो जाता है वे समाज की विभिन्न रुचियों, प्रवृत्तियों तथा आवश्यकताओं को नहीं समझ पाते हैं इस समस्या के निवारण हेतु आवश्यक है कि ऐसा पाठ्यक्रम तैयार किया जाए जिससे कि अपने ज्ञान को समाज के साथ एवं उनकी आवश्यकताओं के साथ समन्वित कर सके। स्वतंत्र भारत में अनगिनत तकनीक शिक्षा संस्थान है परन्तु व्यापक मांग को देखते हुए उनकी संख्या आज भी बहुत कम है अतः बहुत से इच्छुक छात्र विद्यालय की कमी के कारण प्रवेश नहीं पाते हैं। इसके लिए सरकार को और अधिक तकनीकी संस्थानों की स्थापना का प्रयास करने की आवश्यकता है। तकनीकी संस्थानों के लिए प्रशिक्षित अध्यापक भी नहीं मिल पाते हैं इससे शिक्षा के विस्तार कार्य को धक्का पहुंचता है क्योंकि अच्छे प्रशिक्षु या तो किसी उच्च संस्थान में काम करने लगते हैं या विदेश चले जाते हैं, शिक्षा को औसत विद्यार्थी अपना जीवन यापन का जरिया बनाते हैं। इसके लिए आवश्यक है तकनीकी शिक्षा के शिक्षक को आकर्षक वेतन और अन्य सुविधाएं प्रदान की जाए जिससे एक दक्ष शिक्षक अपना ज्ञान अपने छात्रों में बांट सके जिससे कि अच्छे और योग्य छात्र निकलकर देश की सेवा में अपना योगदान दें सके। तकनीकी शिक्षा में सबसे बड़ी समस्या आती है कि प्रयोगात्मक कार्य का न होना। किताबी ज्ञान तो बच्चों को प्राप्त हो जाता है मगर व्यवहारिक ज्ञान नहीं प्राप्त हो पाता क्योंकि अधिकतर संस्थानों में प्रयोगशालाओं का अभाव है और यदि हैं भी तो उनमें उपकरण का अभाव है अतः सरकार और हर तकनीकी संस्थान की जिम्मेदारी बनती है कि वह बच्चों को आवश्यक उपकरणों के साथ सुसज्जित प्रयोगशाला उपलब्ध कराएं। जिससे छात्रों के साथ न्याय हो सके।

तकनीकी शिक्षा का सबसे बड़ा लाभ है बेरोजगारी समस्या से निजात, क्योंकि यह वर्तमान की ज्वलन्त समस्या है। इसके निराकरण का रास्ता तकनीकी शिक्षा से हो कर जाता है। निर्माण के हर क्षेत्र में कुशल तकनीक की आवश्यकता होती है तकनीकी शिक्षा निश्चित रूप से राष्ट्र के विकास को बढ़ावा देती है। यदि कोई देश किसी भी क्षेत्र में उन्नति करता है तो इसका लाभ उसके देशवासियों को तो प्राप्त ही होता है साथ ही अन्य देशों को भी वह अपना लाभांश उपलब्ध कराकर विदेशी मुद्रा अर्जित कर अपनी आर्थिक स्थिति को और भी मजबूत बना सकता है साथ ही उस देश के सभी नागरिक सुखी, संपन्न, स्वाबलंबी एवं आत्मनिर्भर बन सकते हैं। तकनीकी शिक्षा संपन्न व्यक्ति स्वयं तो उन्नति करता ही है साथ साथ अपने समाज और राष्ट्र की उन्नति कर राष्ट्रीय एकता एवं विश्व बंधुत्व का साधन भी बन जाता है। कला कौशल, वाणिज्य, व्यवसाय तथा तकनीकी इंजीनियरिंग की दृष्टि से विकसित राष्ट्र सहज ही आधुनिक विश्व के मंच पर महत्व पूर्ण प्रतिष्ठा प्राप्त करते हैं। यही कारण है कि तकनीकी शिक्षा किसी भी राष्ट्र के लिए बहुत ही महत्वपूर्ण स्थान रखती है।

तकनीकी शिक्षा ज्ञान और अनुभवों से परिपूर्ण प्रशिक्षित प्रतिभा का सृजन करने का स्थिर एवं अपरंपरागत माध्यम है। अत्यंत हर्ष का विषय है कि स्वतंत्रता प्राप्ति के उपरांत सरकार द्वारा हजारों तकनीकी संस्थाओं को स्थापित किया जा चुका है और भविष्य में और भी संस्थान खुलने की आशा है क्योंकि इस क्षेत्र में सरकार के साथ-साथ गैरसरकारी संस्थाएं भी अपना योगदान दे रहे हैं। देश की बढ़ती हुई बेरोजगारी, युवाओं में पनपती कुप्रवृत्तियों एवं असामाजिक तत्वों से निजात पाने के लिए तकनीकी शिक्षा एक बहुत मजबूत शस्त्र है। जब हर हाथ में काम होगा तो कोई न बेरोजगार होगा और देश की समृद्धि का रथ तीव्र गति से विकास के मार्ग पर अग्रसर हो जाएगा साथ ही हमारा देश पुनः सोने की चिड़िया बन सकेगा।

अधूरी कहनी

25 जून 1992,शाम के सात बजे थे शायद। कृष्ण की बाँसुरी सुन जैसे राधा दौड़ी चली जाती होंगी ठीक वैसे ही यह पगली लड़की उसके स्कूटर का हार्न सुनकर घर से बाहर दौड़ी। न घरवालों की, न घर में आए मेहमानों की फिक्र। उसे सुनाई दिया तो सिर्फ उसके स्कूटर का हार्न और दिखाई दिया तो सिर्फ उसे चलानेवाला वह लड़का। यह भोली, पगली लड़की अनजान थी कि आनेवाले १–२ घंटे के भीतर जीवन में बहुत कुछ बदलने वाला था जिसके बारे में उसने कभी कल्पना भी नहीं की थी। जब उससे मुलाकात कर घर लौटी तो घरवालों से लेकर मोहल्लेवालों को उस पगली को ढूँढते हुए पाया। दादाजी और दादीजी हाथ खींचकर घर के भीतर लेकर पहुँचे तो घर में जैसे मातम छाया हुआ था। दादा–दादी की लाडली पर आज दादाजी का हाथ कुछ इस तरह उठा कि मानो कह रहे हों कि तू पैदा ही क्यों हुई? माता–पिता ने भी अपना गुस्सा,अपनी सारी भड़ास निकाली। दादीमाँ के बीच–बचाव का मानो कोई असर ही नहीं पड़ रहा था। लेकिन इस सब के बीच जो घरवालों की जरा–सी तेज आवाज से घबरा जाती थी उसे मानो कोई फर्क ही नहीं पड़ा हो। उसे तो बस रह–रहकर वह स्पर्श ही याद आ रहा था जिसे उसने अपने जीवन में पहली बार महसूस किया था। पहले प्यार का एहसास, हृदय में कोमल भावनाओं का सृजन, लेकिन इन दोनों के बीच का प्रेम संबंधठीक उसी तरह था जैसे होती हैं रेल की पटरियाँजो होती तो आमने–सामने हैं पर उनका निर्माण कभी आपस में जुड़ने के लिए नहीं किया जाता। इनके साथ भी ऐसा ही हुआ। लेकिन कहते हैं न दो लोगों के बीच का प्यार कभी बराबर का नहीं होता यहाँ भी इस भोली लड़की के लिए इश्क रुहानी था और लड़के के लिए सिर्फ उम्र का एक पड़ाव। कच्ची उम्र में मिलने वाला प्यार और धोखा आपकी सोच और जीवन में खुशी व गम की गहरी लकीर हमेशा के लिए खींच देता है और ऐसा ही इस लड़की के साथ हुआ जो उसे दे गया अमिट दर्द व गम। वह जाते–जाते उसकी जिंदगी का हर रंग खा गया। उसने उन रंगों को वापिस लाने की बहुत कोशिश की पर इकलौती तरकीब जो काम आई, वो थी उसने अपने घर की सभी दीवारों को काँच कर दिया और कोई आम काँच नहीं, हर रंग का काँच। अब हर रोज की धूप जब इनसे छँट कर उसके ऊपर गिरती है तो कुछ वक्त के लिए वह अपना वो हर रंग महसूस कर पाती है जो वह निगल गया। ■

हेमा कृपलानी
स्वतंत्र लेखन
सिंगापुर

स्वाध्याय जीवन को वरदान में बदल देता है

> **अतः हमारे दैनिक जीवन में स्वाध्याय का समावेश होना आवश्यक है। स्वाध्याय का सबसे बड़ा लाभ यह भी है कि इससे मनुष्य के विचार उन्नत एवम परिष्कृत बनते हैं। स्वाध्याय निःसंदेह एक ऐसा अमृत है जो मानस में प्रवेश कर मनुष्य की पाशविक प्रवृतियों को नष्ट कर देता है। जिसने स्वाध्याय का महत्व जान लिया, उसने सौभाग्य का द्वार पा लिया। वे परिवार धन्य है जिनमें उत्तम पुस्तकों का संग्रह होता है। जहां नियमित स्वाधाय होता है वहां देवत्व का वास होता है।**

राजकुमार जैन राजन
चित्रा प्रकाशन
आकोला, चित्तौड़गढ़
(राजस्थान)

व्यक्ति के संपूर्ण व्यक्तित्व को संवारने में साहित्य का बहुत बड़ा योगदान हैं। साहित्य सभ्यता व इतिहास की आंखें हैं जो मनुष्य को एक बेहतरीन दृष्टि देती हैं। मनुष्य के जीवन में अच्छे संस्कारों का निर्माण साहित्य के द्वारा ही संभव होता है। प्राचीनकाल में जब लेखन कला का विकास नहीं था तो मनुष्य परस्पर विचारों के आदान –प्रदान से ज्ञान प्राप्त करते थे, किंतु जैसे – जैसे लेखन कला का विकास हुआ वैसे – वैसे विभिन्न विषयों पर विचारों को लिपिबद्ध किया जाने लगा और विभिन्न विषयों पर केंद्रित पुस्तकें तैयार होने लगीं। पुस्तकें नहीं होतीं, तो कदाचित हम न वैदिक मानव की प्राथमिकताओं को जान पाते और न ही हमारे पास दुनिया की सर्वाधिक भाषाओं में अनुदित पंचतंत्र की कथाओं में सिमटा हुआ जीवन का अनुभव होता। कागज और छापेखाने के आविष्कार से पहले से पुस्तकें लिखी जाती रही हैं। आधुनिक स्वरूप तक की विकास यात्रा में पुस्तकें गुफाओं की दीवारों, शिलालेखों, मृदा पट्टियों व सवर्ण पत्रों तक पर उत्कीर्ण की गई। मनुष्य ने भोज पत्रों, ताम्र पत्रों, कपड़ों पर भी विचारों को व्यवस्थित कर उन्हें पुस्तक का रूप दिया।

हमारे देश मे विभिन्न धर्मो में साहित्यिक पुस्तकों को ईश्वर का दर्जा दिया जाता है। वेद, उपनिषद, गीता, रामायण, गुरुग्रन्थ साहिब, बाइबिल, जैन आगम, बौद्ध पिटक आदि धर्म ग्रन्थों को ईश्वरीय रूप में देखा जाता है। कालांतर में विभिन्न विषयों की पुस्तकें बहुलता से प्रकाशित होने लगी। साहित्य के क्षेत्र में अनेक महापुरुष इस धरती पर हुए हैं, जिन्होनें सद्साहित्य का सृजन कर अपने जीवनकाल में ख्याति व सम्मान को प्राप्त किया।

सद्साहित्य का पठन– पाठन ही स्वाध्याय है। सद्साहित्य के स्वाध्याय का महत्व अति प्राचीनकाल से ही मान्य रहा है। वस्तुतः पुस्तकें हमारी सभ्यता व संस्कृति का दर्पण है। भविष्य को उन्नत व प्रशस्त बनाने का सामर्थ्य रखने वाले अनेक ऋषि, मनीषियों का जीवन दर्शन पुस्तकों में सुरक्षित है। भगवान महावीर, बुद्ध, रामकृष्ण, विवेकानन्द, गांधी, दयानन्द सरस्वती व अन्य इसी प्रकार के महापुरुषों का जीवन प्रेरक बनकर मनुष्य जीवन को आलौकित करता है। इस लिए कहा गया है कि स्वाध्याय करने से ज्ञान के साथ मन की शांति, आनन्द, उमंग और ऊर्जा भी प्राप्त होती है। स्वाध्याय एक ऐसी परम्परा है जो गुरु की अनुपस्थिति में भी गुरु का कार्य करती है। निश्चित ही स्वाध्याय के द्वारा ही मनुष्य एक नयी ज्ञान ऊर्जा प्राप्त करता है। किसी के शरीर के लिए जितना जरूरी पौष्टिक आहार है, मन– मस्तिष्क के लिए उतना ही जरूरी स्वधाय है। स्वाध्याय के अभाव में मस्तिष्क जड़ हो जाता है। मनुष्य की संवेदना व चिंतन क्षमता समाप्त हो जाती है। अनेक वैज्ञानिक अध्ययनों से यह सिद्ध हो चुका है कि प्रेरणादायक धार्मिक, आध्यात्मिक और जीवनोपयोगी साहित्य पढ़ने से

न सिर्फ मानसिक शांति प्राप्त होती है बल्कि विपरीत परिस्थितियों व संघर्षों में कुछ सीखकर आगे बढ़ने की प्रेरणा भी प्राप्त होती है। निश्चित ही स्वाध्याय से प्राप्त होनेवाला आनन्द संसार के सभी आनन्दों से बढ़कर है। स्वाध्याय के साथ आत्मबोध, आत्मज्ञान, और जीवन को सुखमय बनाने का जो ज्ञान मिलता है, वह अन्यत्र कहीं नहीं मिल सकता। स्वाध्याय द्वारा व्यक्ति 'स्व' से जुड़ता है और अपनी ही समीक्षा करता है। इससे उसका स्वयं के जीवन पर आत्म चिंतन बढ़ता है और वह अपने दोषों का शमन करता है। इससे उसके अंदर एक ऊर्जा का प्रवाह होने लगता है जो व्यक्ति की प्राण शक्ति भी बढ़ाता है। अत: हमारे दैनिक जीवन में स्वाध्याय का समावेश होना आवश्यक है। स्वाध्याय का सबसे बड़ा लाभ यह भी है कि इससे मनुष्य के विचार उन्नत एवम परिष्कृत बनते हैं। स्वाध्याय नि:संदेह एक ऐसा अमृत है जो मानस में प्रवेश कर मनुष्य की पाशविक प्रवृतियों को नष्ट कर देता है। जिसने स्वाध्याय का महत्व जान लिया, उसने सौभाग्य का द्वार पा लिया। वे परिवार धन्य है जिनमें उत्तम पुस्तकों का संग्रह होता है। जहां नियमित स्वाधाय होता है वहां देवत्व का वास होता है।

महर्षि अरविंद कहते थे, 'पुस्तकें तो ठीक है, उसकी कोई एक पंक्ति भी जिंदगी में बदलाव ला सकती है'। लोकमान्य बालगंगाधर तिलक स्वाध्याय के समर्थन में कहते थे,'मैं नरक में भी पुस्तकों का स्वागत करूंगा। क्योंकि इनमें वह शक्ति है कि ये जहाँ होगी वहाँ अपने आप ही स्वर्ग बन जायेगा'। वास्तव में किसी पुस्तक का कोई महत्वपूर्ण विचार जीवन की अमूल्य निधि बन जाता है। पर आज स्थिति चिंतनीय होती जा रही है। भौतिकता की चकाचौन्ध, अर्थ कमाने की अति लालसा और साइबर दुनिया के मकडजाल के कारण पाश्चात्य संस्कृति हमारे जीवन में तेजी से हावी होती जा रही है। जिंदगी की आपा–धापी और व्यस्तता में मनुष्य की पढ़ने – लिखने की प्रवृति विलुप्त हो रही है। बालकों, पालकों और शिक्षकों के हाथों से पुस्तकें दूर हो रहीं है। इस कारण हमारे सांस्कृतिक मूल्यों का तेजी से क्षरण हो रहा है। आज बालकों का सबसे ज्यादा समय टी. वी., कम्प्यूटर मोबाइल और इंटरनेट में व्यतीत हो रहा है। इससे बालकों में हिंसक प्रवृत्तियां बढ़ रही है, वे एकाकी और संस्कारहीन होते जा रहे हैं। उनका स्वभाव चिड़चिड़ा हो रहा है। उसका बौद्धिक व भावनात्मक विकास अवरुद्ध हो रहा है। स्कूलों, कालेजों की शिक्षा तभी सफल हो सकती है जब वह सुसंस्कारों से परिपूर्ण हों। जैसे – जैसे परिवारों से पुस्तकें लोप होती जा रही हैं, सुख, शांति, संस्कार भी लोप होते जा रहे हैं।

तकनीक से पुस्तकें को कोई खतरा नहीं हैं बल्कि खतरा तो उसे अपसंस्कृति से है। यदि समाज की रुचियाँ भ्रष्ट कर दी जाएं तो किताबें ही क्या, हर रुचिकर कलात्मक वस्तुएं, समृद्ध सामाजिक परंपराएं निर्थक हो जाएगी। किताबें मनुष्य की मित्र होती हैं। स्वाध्याय करने वालों से जीवंत संवाद करती है। मनुष्य के मौलिक सृजन में स्वधाय की अहम भूमिका होती है। अत: पठन– पाठन से हटकर समाज के स्वस्थ मानसिक वातावरण अथवा सुसंस्कृति से जुड़ना संभव नहीं है। हमें स्वाध्याय की प्रासंगिकता को समझने के साथ – साथ इसकी और रुचि जागृत करने के हर सम्भव प्रयास करने चाहिए ताकि हमारी नव संस्कृति अपने विचारों से सुशिक्षित, सुदृढ और समृद्ध हो सके। बचपन से ही बालकों को पठन – पाठन से जोड़ने के हर सम्भव प्रयास करने चाहिए। घरों में अच्छी साहित्यिक किताबों के लिए बजट होना चाहिए। जिन लोंगों को पढ़ने

का शौक होता है, वे अपनी सम्पूर्ण व्यस्तता के बावजूद पढ़ने का समय निकाल ही लेते हैं। पिछले दिनों एक सर्वेक्षण में सामने आया कि साहित्य के स्वाध्याय की आदत न केवल व्यक्ति को एल्जाइमर और डिप्रेशन जैसी बीमारियों से बचाती है, बल्कि ऐसे लोग अधिक सुखी और अधिक लंबा जीवन जीते हैं। अब समय आ गया है कि हम सब मिलकर स्वाध्याय की परंपरा को पुनर्जीवित करें। सरकार, स्वयमसेवी संगठन एवम व्यक्तिगत तौर पर भी इसे एक आंदोलन के रूप में चलाया जा सकता है। मुझे यह कहते हुए गर्व है कि हमने अपने निजी खर्च से अब तक लगभग ग्यारह लाख रुपये मूल्य की पुस्तकें बालकों, पालकों, संस्थाओं को निःशुल्क उपलब्ध करवाई है और पठन –पाठन में रुचि जगाने के प्रयास निरन्तर कर रहे हैं। मैने मलेशिया, सिंगापुर, आस्ट्रेलिया यात्राओं के दौरान देखा कि वहाँ के बड़े शहरों में, मॉल्स में और छोटे –छोटे गाँवों तक मे बच्चों, युवाओं एवम वरिष्ठजनों के लिए पुस्तकालयों, वाचनालयों की निःशुल्क व्यवस्था रहती है और उनका भरपूर उपयोग वहां के लोग करते हैं। हमारे देश में ऐसा क्यों नहीं हो सकता? हमारे पास महापुरुषों, नेताओं की मूर्तियाँ लगाने के लिए तो धन हैं मगर पुस्तकालय जैसे सार्थक प्रयोजन के लिए धनाभाव का रोना रोया जाता है। स्कूलों के पुस्तकालयों को षड्यंत्र पूर्वक लगभग समाप्त कर दिया गया है, क्यों? जनता को अपने जनप्रतिनिधियों के मार्फत सरकार पर दबाव बनाना चाहिए ताकि विद्यालयों सहित शहरों, गांवों में पुस्तकालय, वाचनालय की स्थापना की जाए, जहाँ लोगों को स्वाध्याय के लिए प्रेरित किया जाए। स्वयमसेवी संस्थाएं भी इस और अपने कदम बढ़ा कर एक अनूठा कार्य कर सकती है। बस जरूरत है प्रगाढ़ इच्छा शक्ति की, ताकि हम सबके सामूहिक प्रयास से हमारा समाज एक पुस्तक प्रेमी समाज बन सके। नव उपनिवेशवाद के बढ़ते कदम और उसके जकड़ते शिकंजों में छटपटाता हमारे देश का मीडिया निरन्तर संक्रमण की स्थिति में अभिशप्त बनकर खड़ा है। इसके विरुद्ध संघर्ष और अपसंस्कृति के खिलाफ एक नया आंदोलन छेड़ने में किताबें विकासशील देशों का हथियार सिद्ध होती हैं। इसके लिए पुस्तकालय संस्कृति को गांवों, नगरों, महानगरों में तेजी से बढ़ाना होगा। अपने आप को महान बनाने के लिए तथा सभ्यता एवम संस्कृति को सुरक्षित रखने के लिए हमें इंटरनेट संस्कृति की जगह पुस्तक संस्कृति को विकसित करना होगा। क्योंकि पुस्तकें हमारे ज्ञान का मार्ग प्रशस्त करती हैं। सत्य से साक्षात्कार कराती है और नूतन प्रेरणादायी विचारों से जीवन मे नव ऊर्जा का संचार करती है। इंटरनेट, टी.वी., मोबाइल के बिना काम नहीं चल सकता, हम यह मानते हैं पर उसका उपयोग आवश्यकता अनुसार ही होना चाहिए। ई–पुस्तकें भले ही पुस्तक संग्रह का शौक पूरा नहीं करती, लेकिन पढ़ने का चाव बनाये रखती हैं। साइबर दुनिया में कमल भी हैं और कीचड़ भी। हमें उस कीचड़ से बचकर अपना ध्यान स्वाध्याय की ओर मोड़ना है। जीवन के विकास और उत्कर्ष में स्वाध्याय के महत्व को कभी नकारा नहीं जा सकता । इसलिए प्रॉस्टिन फिल्ट्स का यह विचार अधिक सार्थक है कि, पुराने कपड़े पहनकर नई पुस्तकें खरीदिये, उनका स्वाध्याय कीजिये। पुस्तकें आपके अभिशापित जीवन को वरदान में बदल सकती है। स्वाध्याय जीवन को सुखमय बनाता है।

माटी का महत्त्व

पूनम माटिया रूस्तगी
स्वतंत्र लेखन
दिल्ली

––इस निवेदन और आह्वान के साथ कि
इसकी शुद्धता और शुचिता का संरक्षण
हमारा दायित्व है।
कहते हैं कि मिट्टी है
मिट्टी में मिल जाएगा।
पंचभूत तत्वों से निर्मित
शरीर है हर जीव का
बदतर है ये माटी से भी
अजर,अमर न रह पाएगा।
उफ न करती, न उफनती
सँजो लेती सब भीतर अपने
सौंधी–सौंधी इसकी महक से
जीवन सुगन्धित हो जाएगा।
किन्तु आत्मा बिन देह
केवल सड़ती, गलती
दुर्गन्ध स्रोत है कहलाती
कौन उसे अपना कह पाएगा।
मेरा–मेरा कह कर
फूला नहीं समाता था जो
आतुर हर स्वजन अपना
अग्नि को अर्पण कर आएगा।
कैसे पूजें मानव देह?
पूजनीय तो है माटी अपनी
मातृभूमि जो है कहलाती
इसे माँ–सम ही पूजा जाएगा।

लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक और गीता रहस्य

डॉ. साधना गुप्ता
(वर्ल्ड रिकॉर्ड होल्डर)
झालावाड़, राजस्थान

लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक का जन्म 23 जुलाई 1857 को वर्तमान महाराष्ट्र स्थित रत्नागिरी जिले के एक गाँव चिखली में हुआ था। ये आधुनिक कालेज शिक्षा पाने वाली पहली भारतीय पीढ़ी में से एक थे। ये कुछ समय अध्यापक भी रहे स्कूल और कालेजों में गणित पढ़ाया। अंग्रेजी शिक्षा के ये घोर आलोचक थे और मानते थे कि यह भारतीय सभ्यता के प्रति अनादर सिखाती है।

लाल–बाल–पाल– गरम दल में लोकमान्य बल गंगाधर तिलक के साथ लाला लाजपत राय और श्री बिपिन चन्द्र पाल शामिल थे। इन तीनों को लाल–बाल–पाल के नाम से पहचान मिली।

"लोकमान्य"– गंगाधर तिलक ने एनी बेसेंट जी की मदद से होम रुल लीग की स्थापना की। होम रूल आन्दोलन के दौरान बाल गंगाधर तिलक को काफी प्रसिद्धी मिली, जिस कारण उन्हें **"लोकमान्य"** की उपाधि मिली थी।

गीता–रहस्य – लोकमान्य तिलक ने यूँ तो अनेक पुस्तकें लिखीं किन्तु श्रीमद्भगवद्गीता की व्याख्या को लेकर मांडले जेल (बर्मा) में लिखी गयी गीता–रहस्य सर्वोत्कृष्ट है जिसका कई भाषाओं में अनुवाद हुआ है।

तिलक के द्वारा गीतारहस्य लिखने का कारण यह था कि वे इस बात को स्वीकार करने को तैयार नहीं थे कि गीता जैसा ग्रन्थ केवल मोक्ष की ओर ले जाता है। उसमें केवल संसार छोड़ देने की अपील है। वह तो कर्म को केंद्र में लाना चाहते थे। वही शायद उस समय की मांग थी। जब देश गुलाम हो, तब आप अपने लोगों से मोक्ष की बात कैसे कर सकते? उन्हें तो कर्म में लगाना होता है। वही तिलक ने किया।

गीता रहस्य में उन्होने श्रीमदभगवद्गीता के कर्मयोग की वृहद व्याख्या की। गीता के निष्काम कर्म योग को निवृत्ति के स्थान पर प्रवृत्ति से जोड़ते हुए इस ग्रन्थ के माध्यम से

बताया कि गीता का चिन्तन उन लोगों के लिए नहीं है जो स्वार्थपूर्ण सांसारिक जीवन बिताने के बाद अवकाश के समय खाली बैठ कर पुस्तक पढ़ने लगते हैं और जिसका फल मोक्ष प्राप्ति के रूप में प्राप्त हो जाता है वरन गीता के रहस्य में यह दार्शनिकता निहित है कि हमें मुक्ति की ओर दृष्टि रखते हुए सांसारिक कर्तव्य कैसे करने चाहिए। अर्थात मोक्ष पर दृष्टि रखते हुए सांसारिक कर्म करे,– पूर्णतः निष्काम। संसार से पलायन नहीं, अपने सांसारिक कर्तव्यों के पालन का पाठ पढ़ाते हुए इस ग्रंथ में उन्होंने मनुष्य को संसार में उसके वास्तविक कर्तव्यों का बोध कराया है। अर्जुन को युद्ध के लिए तैयार करनेवाली, दोनों सेनाओं के मध्य खड़े कृष्ण का गीता उपदेश केवल मोक्ष की बात कैसे कर सकत है!? इसीलिए उन्होंने कहा, 'मूल गीता निवृत्ति प्रधान नहीं है। वह तो कर्म प्रधान है।'

गांधीजी गीता को अपनी माता कहते थे। उन्होंने भी गीतारहस्य को पढ़ कर कहा था कि गीता पर तिलकजी की यह टीका ही उनका शाश्वत स्मारक है।

गीतारहस्य को महज पांच महीने में पेंसिल से ही उन्होंने लिख डाला था। एक दौर में लगता था कि शायद ब्रिटिश हुकूमत उनके लिखे को जब्त ही कर ले। लेकिन उन्हें अपनी याददाश्त पर बहुत भरोसा था। इसीलिए अपने बन्धुओं से कहा था, 'डरने का कोई कारण नहीं। हालांकि बहियां सरकार के पास हैं। लेकिन तो भी ग्रंथ का एक–एक शब्द मेरे दिमाग में है। विश्राम के समय अपने बंगले में बैठकर मैं उसे फिर से लिख डालूंगा।'

योगीराज भर्तृहरिनाथ जी

योगीराज भर्तृहरिनाथ जी (विचारनाथ जी) का नाम योग साधना एवं संस्कृत साहित्य की गरिमा को सर्वोच्च शिखर पर स्थापित करने वाले महान् सिद्ध, सन्त, तपस्वियों, ऋषि- मुनियों, कवियों, साहित्य के प्रकाण्ड विद्वानों एवं नाथ सम्प्रदाय के नाथ सिद्धों में बड़े सम्मान एवं गर्व के साथ लिया जाता है। श्री गुरु गोरक्षनाथ जी के शिष्य योगीराज भर्तृहरिनाथ जी ने राजसी वैभव भोग-विलास का परित्याग कर वैराग्य के असीम राज्य में प्रवेश किया और आजीवन वैराग्य की ही कठोरतम साधना की। योगिराज भर्तृहरि ने दसों दिशाओं और तीनों कालों में परिपूर्ण, अनन्त, चैतन्यस्वरूप, अनुभवगम्य, शान्त और तेजोमय ब्रह्म की उपासना की। महादेव ही उनके एक मात्र उपास्य देव थे। वे शब्दविद्या के नाद ब्रह्म की उपासना के तत्वज्ञ महान् दार्शनिक थे। उन्होंने चुनारगढ़, अजमेर, अलवर, हमीरपुर, गोरख बन्शरी (कल.) हरिद्वार, श्री गोरख टिल्ला (बलुचिस्तान पेशावर) में घोर तपस्या की थी। 2500 वर्ष पूर्व उज्जैन स्थित गुफा में भी उन्होंने 12 वर्षों तक तपस्या कर लघिमा, अणिमा, छुंछुमुक्ता और अग्रहता सिद्धियां प्राप्त की थी। गुरु गोरक्षनाथ जी एवं आदिनाथ मत्स्येन्द्रनाथ जी का भी उज्जैन स्थित इन गुफाओं से सम्बन्ध रहा है। जिनकी परमानन्द अनुभूति आज भी नाथ सिद्धों के योगीजनों को समय-समय पर होती रहती है।

–योगी शिवनन्दन नाथ

रानी लक्ष्मीबाई

डॉ. अर्चना प्रकाश
स्वतंत्र लेखन
लखनऊ, उ.प्र.

नारियों में नारी वह अनोखी थी,
घुड़सवारी रणकौशल में,
अनुपमेय वह अलबेली थी ।
मातु पिता की संतान अकेली,
दुर्गा सी निडर शौर्य कहानी थी ।
तीर चलाना तलवार चलाना ,
घोड़े पर चढ़ हवा सी उड़ना ।
उसकी हर बात नई निराली थी,
गंगाधर राव से ब्याही गई थी ,
नाना की बहन वो छबीली थी ।
अंग्रेजों के छूटे छक्के जहाँ,
झांसी की धरा निराली थी ।
शिशु को पीठ पे बांध लड़ी,
मर्दानी वह हिम्मतवाली थी ।
अभी यहाँ वह गयी कहाँ कब ,
बिजली सी टूटी शत्रु पर भारीथी।
मैं झांसी नहीं दूँगी तुम्हें कभी,
कहते कहते जान गवायी,
रक्त की अंतिम बून्द बहा कर ,
अंग्रेजों को धूल चटा गयी ।
वर्षो में जन्मी एक मसीहा थी,
आजादी की देवी आयी थी ।
मत कहना उसे तुम नारी ,
वह नारी रत्न भव्यनगीना थी।
नमन नमन शत नमन उन्हें,
वीरों की राहकीअमर सितारा,
भारत माँ के मुकुट का तारा थी ।

मेरी अभिव्यक्ति

कविताएं / लघु कथाएं लिखो

पुरस्कार जीतो

सीमित संख्या

प्रथम पुरस्कार

₹11000/-

द्वितीय पुरस्कार

₹5100/-

तृतीय पुरस्कार

₹2500/-

info@gssfoundation.org
74154 10516

गोरक्ष शक्तिधाम सेवार्थ फ़ाउण्डेशन
GORAKSH SHAKTIDHAM SEVARTH FOUNDATION
अध्यात्म | शिक्षा | संस्कृति

www.gssfoundation.org
पंजीकरण फॉर्म साइट पर उपलब्ध है।

भारतीय संस्कृति में महिला को वामांगी क्यों कहते हैं

वाम हस्त अर्थात् बायाँ हाथ महिलाओं के लिए शुभता का सूचक है। स्त्री का स्थान पुरुष के बायीं ओर ही माना जाता है। यह शास्त्रोक्त है। जब भी कोई दम्पती किसी धार्मिक अनुष्ठान को सम्पन्न करने के लिए साथ में बैठते हैं तो महिला का स्थान सर्वदा पुरुष की बायीं ओर ही होता है। कोई वैवाहिक कार्यक्रम हो या कोई भी पूजन विधि हमारी सनातन संस्कृति में वैदिक काल से ही महिला पुरुष के वामांग में ही विराजित होती है–

डॉ. शारदा मेहता
स्वतंत्र लेखन
ऋषिनगर विस्तार,
उज्जैन (म.प्र.)

दक्षिणे लक्ष्मणो यस्य वामे तु जनकात्मजा।
पुरतो मारुतिर्यस्य तं वन्दे रघुनन्दनम्।।

बुध कौशिक मुनि विरचित– श्रीरामरक्षास्तोत्र।।३१।।

अर्थात् मैं श्रीरामचन्द्रजी की वन्दना करता हूँ, जिनके दक्षिण भाग में लक्ष्मणजी और वाम भाग में सीताजी विराजमान है।

जब जनकजी सीताजी की विवाह विधि सम्पन्न कराते हैं तब सीताजी की माता का स्थान भी जनकजी की बायीं ओर रहता है–

जनक बाम दिसी होइ सुनयना। हिम गिरि संग बनी जनु मयना।।

(श्रीरामचरितमानस, बालकाण्ड दो. ३२३/२)

चारों पुत्रों (वरों) तथा नव वधुओं सहित श्रीराजा दशरथ बरातियों सहित अयोध्या पधार चुके हैं। चारों ओर आनंदातिरेक दृष्टिगोचर हो रहा है। श्रीराम कैसे विराजित हैं उसका वर्णन गोस्वामी तुलसीदासजी करते हैं–

नीलाम्बुज श्यामल कोमलांगं, सीतासमारोपित वाम भागम्।
पाणौ महासायक चारू चापं, नमामि रामं रघुवंश नाथम्।।

(श्रीरामचरितमानस, अयोध्याकाण्ड श्लोक क्र. ३)

अर्थात्– नीले कमल के समान श्याम और कोमल जिनके अंग हैं, श्रीसीताजी श्रीरामजी के वाम भाग में विराजमान हैं और जिनके हाथों में अमोघ बाण और सुन्दर धनुष हैं। ऐसे श्री रामचन्द्रजी जो रघुवंश के स्वामी हैं को मैं नमस्कार करता हूँ।।३।।

धनुष यज्ञ सम्पन्न होने के पूर्व जनकपुरी में सीताजी अपनी सखियों के साथ पुष्पवाटिका में अपनी सखियों के साथ गौरी पूजन के लिए जाती है। संयोगवश श्रीरामजी भी वहाँ लक्ष्मण ाजी के साथ आते हैं। सभी सखियाँ सीताजी के साथ मंदिर में प्रवेश करती हैं। सीताजी गौरी

पूजन करती है। उनके वाम अंग में स्फुरण होता है। यह सीताजी के लिए शुभ संकेत है। श्रीराम स्तुति में गोस्वामी तुलसीदासजी ने लिखा है–

'जानि गौरी अनुकूल सिय हिय हरष न जाहि कही।
मंजुल मंगल मूल वाम अंग फड़कन लगे।।'

महिलाओं का वामअंग में स्फुरण होना भी शुभ माना जाता है। जब श्रीरामचन्द्रजी ने विशाल वानर सेना साथ लेकर लंका नगरी के लिए प्रस्थान किया तब अशोक वाटिका में उद्विग्नमना बैठी हुई सीताजी के वाम अंगों में स्फुरण होने लगा। इसकी अनुभूति से ही माता सीता के मन में आशा की किरण जागृत हो गई। वे उनके लिए शुभ संकेत थे–

'प्रभु पयान जाना वैदेही। फरकि बाम अंग जनु कही देही।'

(श्रीरामचरितमानस सुन्दरकाण्ड दोहा ३४/७)

सीताजी के वाम अंगों का स्फुरण इस बात का संकेत है कि अब शीघ्र ही श्रीराम लंका में वानर सेना लेकर पधारेंगे और रावण का वध करेंगे। सीताजी को श्रीराम विजय की अनुभूति हो रही है। उनकी मानसिक वेदना लगभग समाप्त हो रही है और उन्हें यह प्रतीति हो रही है कि वह दिन दूर नहीं जब श्रीराम लंका पर विजय प्राप्त करेंगे और उन्हें अपने साथ अयोध्या ले जाएंगे।

जैसे–जैसे सीताजी के वाम अंगों का स्फुरण उन्हें शुभ संकेत दे रहा था वैसे–वैसे रावण के वाम अंगों का स्फुरण उसे भविष्य के प्रति आशंकित कर रहा था–

'जोई जोइ सगुन जानकिहि होई। असगुन भयउ रावनहि सोई।।'

(श्रीरामचरितमानस सुन्दरकाण्ड दोहा ३४/७)

पुरुष का दक्षिण अंग का फड़कना शुभ होता है और वाम अंग का स्फुरण अशुभ की ओर संकेत करता है। हमारे सामुद्रिक शास्त्र के अनुसार भी यही बतलाया गया है कि पुरुष के वाम अंग का स्फुरण अनिष्ट की ओर इंगित करता है। जब कोई व्यक्ति किसी महत्वपूर्ण कार्य के लिए घर से प्रस्थान करता है और उसके दक्षिण अंग में स्फुरण हो तो वह इस बात का संकेत है उसे अपने कार्य में सफलता प्राप्त होगी। यही स्थिति यदि किसी महिला के साथ होती है तो उसका प्रभाव विपरीत होता है, क्योंकि महिला के वाम अंग का स्फुरण शुभ है।

जब श्रीराम ने अश्वमेघ यज्ञ करने का निश्चय किया तो कुलगुरुओं ने उन्हें यह सलाह दी कि या तो वे दूसरा विवाह करें या माता सीता को लावें क्योंकि अकेला पुरुष यज्ञ कार्य सम्पन्न नहीं कर सकता है। इस महान यज्ञ में पुरुष के साथ पत्नी का साथ में बैठना अनिवार्य है। एक पत्नीव्रती श्रीराम के सामने विकट प्रश्न उपस्थित हो गया था। महान पतिव्रता नारी सीताजी सर्वदा अपने पति श्रीराम के साथ छाया बन कर रही। श्रीरामजी के लिए चौदह वर्ष के वनवास की घोषणा होने पर वह अपने पति के साथ सहर्ष वन में जाती है। वन में विभिन्न संकटों का सामना करती है। पंचवटी में लक्ष्मणजी के साथ पर्णकुटी का निर्माण करवाती है। गृह कार्य करती है। ऐसी सहृदया पतिव्रता नारी को अयोध्या के कुछ अल्पबुद्धि

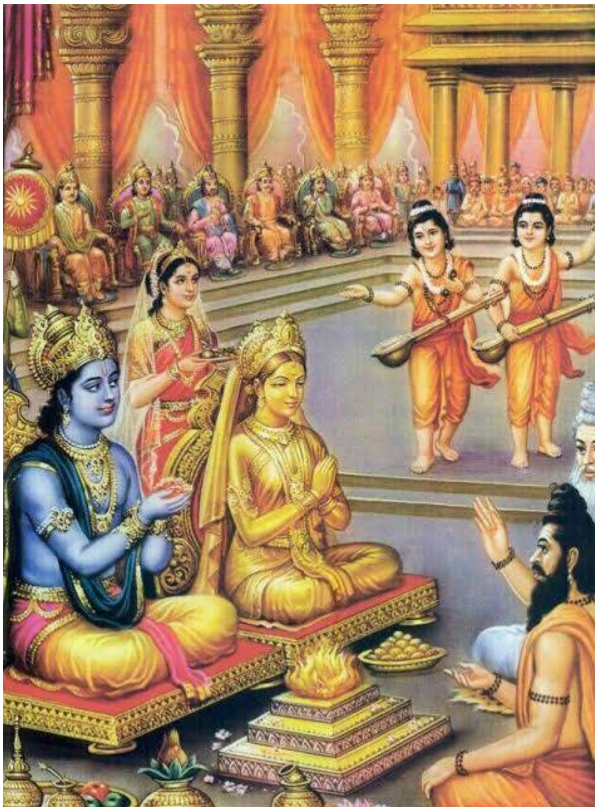

नागरिकों के साथ पुनः वनगमन करना पड़ा था। श्रीराम के हृदय में तो उनका स्थान था ही। महलों के वैभव को छोड़कर वह पति परायणा साध्वी महिला अपने हृदयेश्वर के साथ कंटकाकीर्ण वन में घूमती रही फिर भी उसने अपने पातिव्रत्य की अग्निपरीक्षा दी और अन्त में धरती माता के गर्भ में समा गई। श्रीराम ने आदेश दिया कि स्वर्ण मूर्ति निर्मित की जाए। उस स्वर्णमयी मूर्ति को उनके वामांग में स्थापित कर अश्वमेघ यज्ञ किया गया।

जासु अंस उपजहिं गुनखानी। अगणित लच्छि उमा ब्रह्मानी।।
भृकुटि विलास जासु जग होई। राम बाम दिसि सीता होई।।

(श्रीरामचरितमानस बाल काण्ड १४८/२)

अर्थात् जिनके अंश से गुणों की खान अगणित लक्ष्मी, पार्वती और ब्रह्माणी (त्रिदेवों) की शक्तियाँ उत्पन्न होती हैं तथा जिनकी भौंह के इशारे से जगत् की रचना हो जाती है, वही (भगवान की स्वरूपा शक्ति) सीताजी श्रीरामचन्द्रजी के बायीं ओर स्थित है।।

ज्ञान प्रवाह

पापों से डर और पुण्य से प्रेम, यही तो भगवद्भक्त का प्रधान चिह्न है। कोई व्यक्ति आस्तिक है या नास्तिक, इसकी पहचान किसी के तिलक, जनेऊ, कंठी, माला, पूजा-पाठ, स्नान, दर्शन आदि के आधार पर नहीं, वरन भावनात्मक एवं क्रियात्मक गतिविधियों को देखकर ही की जा सकती है।

–योगी शिवनन्दन नाथ

जन्नत

मैं कुछ दिनों के लिए अपनी बेटियों के पास दिल्ली आई हुई थी। रोज कहीं न कहीं बच्चों के साथ घूमने फिरने कार्यक्रम बन जाता था। एक दिन हमने 'वेगास मॉल' में जाने का प्रोग्राम बनाया। वहाँ जाकर कुछ शॉपिंग करने के बाद हम दूसरे फ्लोर पर खाने के लिए चले गए। वहाँ अपनी –अपनी सीट पर बैठने के बाद बच्चे खाने का आर्डर देने व लेने के लिए चले गये। मैं वहीं अपनी सीट पर बैठ कर लोगों की आवाजाही का आनंद लेने लगी। कुछ नवविवाहित जोड़े, तो कई लड़के –लड़कियां, कुछ दम्पति अपने बच्चों के साथ तो कई जन अकेले ही आए हुए थे। कुछ खा पीकर उठ रहे थे तो कुछ बैठने के लिए जगह तलाश रहे थे। मैं सब आने जाने वालों को बड़ी उत्सुकता से देख ही रही थी कि बच्चे अपनी अपनी पसन्द का खाना लेकर आ गये। मैंने खाना शुरू ही किया था कि मेरी नजर एक काफी बुजुर्ग महिला व उसके बेटे पर पड़ी जो कि अपनी माँ का हाथ हाथ पकड़कर हमारी बगल वाली सीट पर बैठने जा रहा था। पहले तो उसने अपनी माँ को अच्छी तरह बिठाया और फिर खाना लाने के लिए उसकी पसन्द पूछने लगा। मुझे इतनी भीड़ में माँ–बेटे को देखकर बहुत सुखद अनुभूति हो रही थी। बेटे के जाने के बाद माँ सब लोगों को व हॉल को बहुत उत्सुक भरी नजरों से देख रही थी। बेटे ने आने के बाद खाना रख कर माँ से बहुत प्यार से खाने का आग्रह किया। माँ ने एक दो कौर ही खाए होंगे कि बोली 'बेटा तुम तो मुझे यहाँ ले आए घर में बहु क्या सोच रही होगी।' कुछ नही माँ वह घर में अपने आफिस के काम में व्यस्त है' बेटे ने जवाब दिया। 'अच्छा माँ ये बताओ जब मैं उसे लेकर बाहर जाता हूँ तब तुम घर में बैठकर क्या सोचती हो?' बेटे ने फिर पूछा। 'मुझे तो बहुत अच्छा लगता है।' माँ ने जवाब दिया। तुम दोनों को एक साथ खुश देखकर मुझे बहुत प्रसन्नता होती है। 'माँ बहुत प्यार से बोली।' अब मैंने और आपकी बहु ने सोचा है कि आपको भी कभी–कभी अपने साथ लेकर आएंगे ताकि आप भी इस जगह का आनंद ले सकें। बीच–बीच में बेटा अपने हाथों से भी माँ को खिला रहा था। माँ–बेटे का प्यार देखकर मैं तो जैसे धन्य हो गई। वे दोनों शायद इस बात से अनजान थे कि उनकी सारी बातें मेरे कानों में पड़ रही हैं।

खाने के बाद हम नीचे हॉल में आ गये जहाँ स्टेज पर डांस–गाना चल रहा था। हम डांस गाने का मजा ले रहे थे तभी मैंने देखा वही लड़का अपनी माँ का हाथ पकड़कर आया और हमारी बगल वाली सुरक्षित जगह पर खड़ा हो गया। उस समय स्टेज पर भाँगड़ा चल रहा था। कुछ अफ्रीकन औरतों ने भी भांगड़े की धुन पर स्टेज के नीचे ही डांस करना शुरू कर दिया। हम सब डांस गाने का बहुत आनन्द ले रहे थे तभी मेरी नजर माँ–बेटे पर पड़ी क्या देखती हूँ कि माँ भांगड़े का पूरा लुत्फ उठा रही है और बेटा माँ को देखकर अति प्रसन्नता कि अनुभव कर रहा है। मुझे लगा मानो मैं कोई आलौकिक जन्नत का नजारा देख रही हूँ। थोड़ी देर बाद हम घर वापस चल पड़े लेकिन मेरी आँखों में वही माँ–बेटे के चेहरे घूम रहे थे। ■

दया शर्मा
स्वतंत्र लेखन
शिलांग (मेघालय)

समाज में शांति, अहिंसा एवं पवित्रता की स्थापना में

धर्म, अध्यात्म और राजयोग की भूमिका

डॉ. बी. के. मेधावी शुक्ला
(पूर्व अनुसंधान अध्येता)
गांधी एवं शांति अध्ययन विभाग
महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा

आत्म दृष्टि से आध्यात्मिक उन्नति : प्रस्तुत आलेख में मानव जीवन के सर्वाधिक संवेदनशील पक्षों को उजागर करने का प्रयास किया गया है जिससे ' वसुधैव कुटुम्बकम ' की विराट अभिव्यक्ति से जुड़ी सत्यता का भावनात्मक स्वरुप जीवन के व्यवहार में परिणित हो सकें । सामाजिक जीवन में शांति एवं अहिंसा की स्थापना के परिदृश्य में – ' सम्पूर्ण विश्व एक परिवार है ' का मूल भाव सन्निहित है जो जीवन की गतिशीलता के मध्य आज ओझल सा हो गया है । जीवन में ' सर्व – धर्म समभाव ' का अभिप्राय केवल धर्म – कर्म से सम्बद्ध प्रतीत होता है जबकि ' सर्वे – भवन्तु सुखिन:.....' का संदर्भ अध्यात्म और पुरुषार्थ से अनुप्राणित होता है तथा एक अंतिम आशा के रूप में ' वसुधैव कुटुंबकम ' का वृहद भावार्थ ' राजयोग से उपजे गहरे मौन ' को प्रतिबिम्बित करता है । इस शोध आलेख में अत्यंत सूक्ष्म रूप से इस सत्य को प्रतिपादित करने का प्रयास किया गया है जिससे समाज में शांति एवं अहिंसा की स्थापना को निर्धारित करने में धर्म , अध्यात्म और राजयोग की स्पष्ट भूमिका का विश्लेषण किया जा सके । यदि मानव स्वभाव द्वारा सहजता से राजयोग की मौलिकता को आत्मिक कल्याण हेतु स्वीकार कर लिया जाए अर्थात् आध्यात्मिक जगत की सूक्ष्म अवधारणा का बोध उसे धर्मगत आचरण के कर्मगत उदाहरण से जीवन को गतिशील रखने की प्रक्रिया में स्थायी रूप से संलग्न कर देता है । जीवन के प्रति धर्म एवं कर्म की स्वीकारोक्ति व्यक्ति को ' भक्ति – मार्ग ' के उच्च आयाम पर स्थापित करते हुए आत्म दृष्टि की श्रेष्ठ प्रक्रिया के लिए मनुष्य को अध्यात्म तथा पुरुषार्थ द्वारा ' ज्ञान – मार्ग ' की ओर अग्रसर हो जाने के लिए प्रेरित करती है । अत: आत्मिक विकास से व्यक्ति अपने जीवन में ईश्वरीय सत्ता की अनुभूति से अभिभूत होकर राजयोग और मौन के ' पवित्र – मार्ग ' की ओर गतिशील होता है जो सामाजिक ' शांति एवं अहिंसा ' की स्थापना में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाने में सक्षम हो जाता है।

शांति एवं अहिंसा की स्थापना : सृष्टि के आरंभ से ही सामाजिक जीवन की विभिन्न स्थितियों में प्राणी मात्र के मध्य आपसी संबंधो के विभिन्न आयाम निर्मित रहने के कारण एक मनुष्य दूसरे मनुष्य से लोक – व्यवहार करते हुए गतिशील था। जीवन का आरंभिक काल न्यूनतम आवश्यताओं के साथ पूर्णता के प्रति संतोषजनक परिवेश से होता हुआ सदा की भांति व्यतीत हो जाना एक सहज स्थिति का परिचायक है जिसमें आपसी संघर्ष के लिए कोई स्थान शेष नहीं रह जाता है। मनुष्य ने जब जीवन की इच्छाओं के लिए अपनी आन्तरिक क्षमताओं का प्रयोग किया उस समय बाह्य जगत के प्रति विस्तारवादी दृष्टिकोंण को अपनाना अनिवार्य स्थिति बन गयी जिसकी परिणिति सब कुछ समेटने के लिए तत्परता से कार्यरत होने लगी। व्यक्तिवादी मनरू स्थिति के अंतर्गत ' मैं ' और 'मेरा' का तार्किक प्रस्तुतिकरण ' स्व – नाम – धन्य ' से भरपूर होने के कारण सम्पूर्ण व्यवहार केवल व्यक्ति , घटना , विचार एवम् भावना तक सीमित हो गया जिसमें संकीर्ण मानसिकता की स्थितियां एक दूसरे को आहत करने का प्रमुख कारण बन कर रह गयीं। समाज में सभी मनुष्य सर्व के कल्याण हेतु मनन एवम् चिंतन करने लगे तथा एक दूसरे के सुख – दुःख में भागीदारी निभायें, जिससे सामाजिक सदभाव का जन्म हो जाए और यह व्यवहार समाज के व्यक्तियों के लिए सदा स्वीकार्य भाव में संपन्न हो सके। यह स्थिति सात्विक परिकल्पना का परिणाम है जीवन के विविध पक्ष अपने आप में सब कुछ प्रगट करने के लिए पर्याप्त होते हैं लेकिन मानवीय कर्तव्य निष्ठा धर्मगत व्यवहार के लिए सदा से ही आशान्वित रहती है जिससे अधिकार एवम् कर्तव्य का संतुलन बना रहना सुनिश्चित हो जाता है। एक मनुष्य समाज में रहते हुए इस बात को समझता है कि मुझे क्या करना है? क्या नहीं करना है? और वह स्वयं की 'समझ' के अनुसार सत्य एवं असत्य का आंकलन करते हुए जीवन पर्यत अपने व्यवहार को नियंत्रित करता रहता है। कई बार सामाजिक दबाव की समाज शास्त्रीय स्थितियां मानवीय आचरण को निर्धारित करती हैं जिसमें धर्म सम्मत 'आचार – व्यवहार' की मर्यादाएं कार्यरत रहती हैं जो जीवन के 'धारणा' पक्ष को क्रियान्वित करने में मददगार सिद्ध होती हैं। एक सामाजिक व्यवस्था में स्थूल संसाधनों की पूर्ति के पश्चात् सूक्ष्म श्रेष्ठ व्यवहार की आवश्यकता होती है जिससे समाज व्यवस्थित रूप से गतिशील हो सके । समाज में शांति एवं अहिंसा की स्थापना जब सामान्य मानवीय प्रयास से पूर्णता को प्राप्त नहीं हो पाती है तब धर्म पक्ष की आवश्यकता अच्छे कर्म की प्रासंगिकता के रूप में अनिवार्य हो जाती है।

धर्मगत आचरण के कर्मगत उदाहरण : मनुष्यगत आचरण की सामाजिक स्वीकारोक्ति उन स्थितियों में व्यक्ति के द्वारा घटित हो जाती है जिस समय व्यक्ति धर्म – कर्म की व्यावहारिकता को भक्ति – भाव के साथ जीवन के व्यवहार में मानवीय आस्था के साथ प्रकट कर देता है। यदि हम जीव–जगत के संबंधो की बात करें तो हमें यह ज्ञात हो जाएगा की कैसे समाज के भीतर विभिन्न धर्म और उनसे उपजे सम्प्रदाय जो किसी निश्चित विषय–वस्तु के अंतर्गत कल्याणकारी कार्यो में संलगन हैं। राम चरित मानस की एक चौपाई धर्मगत विभिन्नताओं के पश्चात् भी सामाजिक समरूपता को एकाकार करने में मददगार सिद्ध होती है जिसके अंतर्गत ' नदिया एक घाट बहुतेरे ......' जैसे सत्य का स्वरुप विद्यमान है । मानवजाति के द्वारा ' सामाजिक शांति एवं अहिंसा ' की स्थितियों को बनाये रखने हेतु ' धर्म के मर्म ' को गहरे स्तर पर स्वीकार करना होगा जिससे समाज में धर्मगत आचरण के कर्मगत उदाहरण मर्मगत स्वरुप में स्थापित हो सकें । सामाजिक परिवेश में मानव द्वारा रचित स्वरुप जब कर्तव्य एवम् अधिकार के सामंजस्य को बोध के स्तर से व्यवहार के क्रियान्वयन तक स्थानान्तरित कर देते है तब धर्म सम्मत आस्था पर किसी भी प्रकार का कुठाराघात नहीं होता है । स्व कल्याण की दिशा में किये गए कार्यो का लेखा–जोखा भले ही बाह्य स्वरूप में प्रगट नहीं होता लेकिन आतंरिक समझ को सीखने के अभ्यास से जोड़ने की मन:स्थिति व्यक्ति को नवीन अनुभवों की ओर अग्रसित करने में मददगार होती है। जीवन के जागृत परिदृश्य को स्वयं की बोधगम्यता के लिए आधार मानकर व्यक्ति इस सत्य को अंगीकार कर लेता है कि इस नश्वर शरीर में आत्मा विराजित है जिसे विज्ञान जगत ने 'जीव–आत्मा' के रूप में स्वीकार कर लिया है । आत्मिक विकास के अनुक्रम में निज जीवन के प्रति आशान्वित भाव मनुष्य को बढ़ते क्रम के लिए अभिप्रेरित करते हैं जहां से वह आत्मा के संदर्भ को कल्याण के सुखद प्रसंग में परिवर्तित होते हुए अनुभव करने लगता है ।

आध्यात्मिक जगत की सूक्ष्म अवधारणा : भौतिकवाद के मध्य अध्यात्मवाद का पुरुषार्थ जीवन की गतिशीलता में कठिन अवश्य लगता है लेकिन किसी भी युग में इस प्रकार का आत्मिक परिष्कार असंभव नही हुआ है। जीवन में शांति एवम् अहिंसा का मार्ग आत्मा से जुड़ा गहन पक्ष है जिसकी विराटता सामाजिक सौहार्द के रूप में प्रकट होती है क्योंकि आत्म दर्शन की व्याहारिकता आध्यात्मिक जगत की सूक्ष्म अवधारणा से प्रतिपादित होती है। व्यक्तिगत जीवन के पुरुषार्थ में आत्मा के गुण एवम् शक्ति को विकसित करने के लिए आत्मिक शक्ति के प्रति जागृत मनोभाव स्वयं को सक्षम बनाने के निम्मित कार्य करते हुए अग्रसर रहते हैं तब जीवन की मौलिकता आत्मिक उत्कर्ष का कारण बन जाती है। आत्मिक स्मृति का सर्वाधिक लाभ उस समय आत्मा को प्राप्त होता है जब वह स्वयं की श्रेष्ठ स्थिति से विपरीत परिस्थितियों में भी विजयी बन जाती है और आत्मिकता के भाव को निरंतर बनाये रखते हुए पुरुषार्थ के पवित्र कार्य में अपना सब कुछ अर्पित करने के लिए तत्पर हो जाती है । सामाजिक जीवन के अंतर्गत व्यक्तिगत मनुष्य के सम्बन्ध में जिन मानवीय संरचनाओं का जन्म सुनिश्चित होता है उसमें अति सूक्ष्म आध्यात्मिक पुरुषार्थ सम्मिलित है जो एक व्यक्ति को उसके वास्तविक स्वरुप से अवगत कराता है।

स्वयं की उपयोगिता को स्व कल्याण से विश्व कल्याण के मंगल कार्य में संलग्न कर देने से स्वयं की अवस्था को ऊँचा बनाने की ओर गतिशील किया जा सकता है जो अंततः आत्मा को श्रेष्ठ स्वरुप में रूपांतरित करने में मददगार होता है। सामाजिक शांति एवम् अहिंसा की स्थापना मानवीय विचारधारा का वह सबल पक्ष है जिसमें व्यक्तिगत व्यवहार की उच्चता उसके द्वारा स्वीकृत की गयी धार्मिक व्यवस्था में सम्मिलित रहती है। जीवन की गतिशीलता

में आत्मिक कल्याण का भाव पोषित होते हुए आत्मा के गुणात्मक स्वरुप में व्यावहारिक होने की स्थिति के लिए कार्य करना मानव की श्रेष्ठता का प्रमाण है। स्वयं के व्यक्तिगत अस्तित्व की महत्ता को सदा शक्तिशाली बनाने की चेष्टा के साथ अंगीकार करने हेतु पुरुषार्थ करना आवश्यक होता है जिसमें आत्मा का संबंध परमात्मा से स्थापित हो जाता है और आत्मा गुण एवम् शक्तियों से सुसज्जित होने लगती है। शरीर और शरीर से जुड़े बन्धनों को निभाने के लिये धर्म की उपादेयता लौकिक जगत के पोषण का पर्याय बनती है जिसकी सहजता मानवीय आचरण का केंद्र बिंदु बन जाती है जिसमें भक्ति – भाव के साथ की गयी साधना अंततः मनुष्य के संतोष का कारण होती है।

राजयोग की मौलिकता से आत्मिक विकास : जीवन में आत्मा एवम् आत्मा से सम्बंधित गतिविधियों के प्रति चेतना का विकास आध्यात्मिक जगत का आलौकिक स्वरुप है जो मनुष्य को उसके 'आगमन एवम् प्रस्थान' के परिदृश्य में छिपे रहस्यों को उजागर करता है जिससे आत्मा अपनी चेतनता को आत्मसात करके अपने वास्तविक स्वरुप में विद्यमान होने के लिए सजग हो जाती है । सामान्यतरू मानव द्वारा चेतन मन से धर्म को अपनाते हुए जीवन की पूर्णता तक पहुँचने का प्रयास किया जाता है जिसके अंतर्गत मानवीय भावनाओं की प्रधानता निहित रहती है। सामाजिक व्यवस्थाओं के भीतर मनुष्य के अंतर्मन में स्वयं की अनुभूति जब स्व संवाद का कारण बन जाती है तब अध्यात्म अर्थात् आत्मिक स्थितियों के लिए कार्य करना और आत्मा के उत्थान हेतु मनन – चिंतन किया जाना श्रेष्ठ पुरुषार्थ का प्रमाण होता है। जीवन की चेतना में सदा यह उथल – पुथल बनी रहती है कि क्या एक मात्र धर्म अथवा अकेला अध्यात्म या केवल राजयोग से जीवन ज्योति की गुणवत्ता को आलोकित करना संभव है? इस सत्य के प्रत्युतर में धर्म की लौकिकता के साथ अध्यात्म के आलौकिक स्वरुप और राजयोग की पारलौकिकता का श्रेष्ठ सामंजस्य आत्मा की उच्चता का आधार है। अतः सृष्टि पर सामाजिक व्यवस्था में शांति एवम् अहिंसा की स्थापना हेतु मानव जाति द्वारा हृदय और मस्तिष्क से धर्म के आचरण को स्वीकृत करते हुए व्यवहार में अध्यात्म की मौलिकता से आत्मिक विकास तथा राजयोग से आत्मा को शक्ति एवम् गुण संपन्न बनाकर सामाजिक सदभाव का साम्राज्य निर्मित किया जा सकता है।

विश्व कल्याण का मंगलकारी स्वरुप : सामाजिक जीवन में शांति एवं अहिंसा की स्थापना में व्यक्तिगत व्यवहार का विशेष योगदान होता है जिसमें व्यक्ति, घटना, विचार एवं भावना की प्रमुख रूप से प्रधानता रहती है। सामान्य जीवन काल में स्वयं की मनः स्थिति द्वारा निर्मित व्यक्ति की आवश्यकता, इच्छा एवं लोभ के मध्य सामंजस्य को सात्विक परिकल्पना द्वारा परिवर्तित करके स्व – कल्याण से सर्व – कल्याण हेतु 'मनन – चिंतन' के वैचारिक धरातल से सहभागिता का निर्माण किया जा सकता है । धर्म सम्मत आचार – विचार की मर्यादा , व्यक्ति के जीवन में धारणा पक्ष का प्रतिपादन ' अच्छे – कर्म ' की प्रासंगिकता से आरंभ करती है जिसका सुख आत्म संतुष्टि का कारक बनता है और अन्य आत्माओं को सहजता से 'श्रेष्ठ – कर्म' करने की प्रेरणा प्रदान करता है। स्वयं के व्यवहार नियन्त्रण में सामाजिक दबाव का प्रभाव व्यक्ति को क्या करना है? तथा क्या नही करना है ? के आंकलन को जीवन की व्यावहारिकता से आचरण युक्त बनाने में सहायक होता है।

समाज में शांति एवं अहिंसा की स्थापना में धर्मगत आचरण का अत्यधिक महत्व होता है क्योंकि व्यक्ति के द्वारा 'धर्म के मर्म' अर्थात् 'अहिंसा परमो धर्मः ...' को अनुभव करते हुए कर्तव्य बोध एवं दायित्व बोध को स्वीकार कर लिया जाता है । व्यक्ति के द्वारा स्वयं के भीतर आत्मा की स्वीकारोक्ति इस बात का प्रमाण होता है कि व्यक्ति ' आत्मा के सौन्दर्य ' को उसके गुण एवं शक्ति से संपन्न स्थिति के रूप में अपनाता है जो सर्व आत्माओं के मध्य ' आत्मिक संबंध 'अर्थात्' वसुधैव कुटुम्बकम ' के सुखद परिणाम के रूप में प्रकट होते है। आध्यात्मिक जगत की सूक्ष्म अवधारणा ने आत्मा के उन्नयन का पुरुषार्थ, आत्मा की श्रेष्ठता के लिए आत्म परिष्कार के स्वरुप में पुरुषार्थ करके आत्मसात कर लिया है जिससे मनसा, वाचा एवं कर्मणा की पवित्रता को व्यावहारिक जगत में अक्षुण्य बनाए रखना आसान हो जाता है। स्वयं के कल्याण (आत्मिक उत्थान) की परिभाषा आध्यात्मिक जगत में इतनी बड़ी होती है कि उसमें विश्व कल्याण का मंगलकारी कार्य स्वयंमेव समाहित रहता है जो समाज में शांति एवं अहिंसा को बनाये रखने में प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से मददगार सिद्ध होता है। एक मनुष्य होने के नाते स्वयं के जीवन में धर्म से जुड़े कर्म की व्याख्या लौकिक जगत के पोषण में सहायक होती है क्योंकि धर्म से सम्बंधित आचरण व्यक्ति के हृदय एवं मस्तिष्क में भावना की प्रधानता के साथ जुड़े होते है।

राजयोग की मौलिकता अर्थात् 'आत्मा एवं परमात्मा के एकाकार स्वरुप' से आत्मिक विकास की सुनिश्चितता होती है जो स्वयं की आत्मिक अनुभूति पर पूर्णतया आधारित होती है क्योंकि यहाँ आत्मा के गुण एवं शक्ति का ही चिंतन किया जाता है । आत्मा से सम्बंधित गतिविधि के प्रति चेतना का विकास आध्यात्मिक जगत का अलौकिक स्वरुप है जो आत्मा द्वारा अपनी चेतनता को स्वीकार करके वास्तविक स्वरुप में विद्यमान हो जाती है जिसे अतीन्द्रिय सुख के रूप में अनुभव किया जा सकता है । इस प्रकार ' समाज में शांति एवं अहिंसा की स्थापना 'में आत्मा की उच्चता को' वसुधैव – कुटुम्बकम' के संबंध में स्वीकार करना संभव हो जाता है क्योंकि धर्म की लौकिकता के साथ अध्यात्म की अलौकिकता से जुड़े पक्ष राजयोग की पारलौकिकता के मध्य श्रेष्ठ सामंजस्य बनाने में सफल हो जाते हैं जो मानवीय संवेदनशीलता को 'आत्मा के गुण एवं शक्ति संपन्न' स्वरुप में सामाजिक सदभाव के लिए सदा ही कार्यरत रहते हैं।

हमारे प्राचीन संस्कार

10 कर्तव्यः – 1.संध्यावंदन, 2.व्रत, 3.तीर्थ, 4.उत्सव, 5.दान, 6.सेवा 7.संस्कार, 8.यज्ञ, 9.वेदपाठ, 10.धर्म प्रचार।...क्या आप इन सभी के बारे में विस्तार से जानते हैं और क्या आप इन सभी का अच्छे से पालन करते हैं?

10 सिद्धांतः– 1.एको ब्रह्म द्वितीयो नास्ति (एक ही ईश्वर है दूसरा नहीं), 2.आत्मा अमर है, 3.पुनर्जन्म होता है, 4.मोक्ष ही जीवन का लक्ष्य है, 5.कर्म का प्रभाव होता है, जिसमें से कुछ प्रारब्ध रूप में होते हैं इसीलिए कर्म ही भाग्य है, 6.संस्कारबद्ध जीवन ही जीवन है, 7.ब्रह्मांड अनित्य और परिवर्तनशील है, 8.संध्यावंदन–ध्यान ही सत्य है, 9.वेदपाठ और यज्ञकर्म ही धर्म है, 10.दान ही पुण्य है।

महत्वपूर्ण 10 कार्यः – 1.प्रायश्चित करना, 2.उपनयन, दीक्षा देना–लेना, 3.श्राद्धकर्म, 4.बिना सिले सफेद वस्त्र पहनकर परिक्रमा करना, 5.शौच और शुद्धि, 6.जप–माला फेरना, 7.व्रत रखना, 8.दान–पुण्य करना, 9.धूप, दीप या गुग्गल जलाना, 10.कुलदेवता की पूजा।

10 उत्सवः – नवसंवत्सर, मकर संक्रांति, वसंत पंचमी, पोंगल–ओणम, होली, दीपावली, रामनवमी, कृष्ण जन्माष्टमी, महाशिवरात्री और नवरात्रि। इनके बारे में विस्तार से जानकारी हासिल करें।

10 पूजाः – गंगा दशहरा, आंवला नवमी पूजा, वट सावित्री, दशामाता पूजा, शीतलाष्टमी, गोवर्धन पूजा, हरतालिका तिज, दुर्गा पूजा, भैरव पूजा और छठ पूजा। ये कुछ महत्वपूर्ण पूजाएं है जो हिन्दू करता है। हालांकि इनके पिछे का इतिहास जानना भी जरूरी है।

10 पवित्र पेयः– 1.चरणामृत, 2.पंचामृत, 3.पंचगव्य, 4.सोमरस, 5.अमृत, 6.तुलसी रस, 7.खीर, 9.आंवला रस और 10.नीम रस। आप इनमें से कितने रस का समय समय पर सेवन करते हैं? ये सभी रस अमृत समान ही है।

10 पूजा के फूलः – 1.आंकड़ा, 2.गेंदा, 3.पारिजात, 4.चंपा, 5.कमल, 6.गुलाब, 7.चमेली, 8.गुड़हल, 9.कनेर, और 10.रजनीगंधा। प्रत्येक देवी या देवता को अलग अलग फूल चढ़ाए जाते हैं लेकिन आजकल लोग सभी देवी–देवता को गेंदे या गुलाम के फूल चढ़ाकर ही इतिश्री कर लेते हैं जो कि गलत है।

10 धार्मिक स्थलः – 12 ज्योतिर्लिंग, 51 शक्तिपीठ, 4 धाम, 7 पुरी, 7 नगरी, 4 मठ, आश्रम, 10 समाधि स्थल, 5 सरोवर, 10 पर्वत और 10 गुफाएं हैं। क्या आप इन सभी के बारे में विस्तार से जानने हैं? नहीं जानते हैं तो जानना का प्रयास करना चाहिए।

10 महाविद्याः – 1.काली, 2.तारा, 3.त्रिपुरसुंदरी, 4. भुवनेश्वरी, 5.छिन्नमस्ता, 6.त्रिपुरभैरवी, 7.धूमावती, 8.बगलामुखी, 9.मातंगी और 10.कमला। बहुत कम लोग जानते

डॉ. विदुषी शर्मा
(वर्ल्ड रिकॉर्ड होल्डर)
अकादमिक काउंसलर, IGNOU
शोध निर्देशक, JJTU
विशेषज्ञ, केंद्रीय हिंदी निदेशालय, उच्चतर शिक्षा विभाग, भारत सरकार
OSD , (Officer on Special Duty) NIOS
दिल्ली

हैं कि ये **10 देवियां कौन हैं।** नवदुर्गा के अलावा इन 10 देवियों के बारे में विस्तार से जानने के बाद ही इनकी पूजा या प्रार्थना करना चाहिए। बहुत से हिन्दू सभी को शिव की पत्नीं मानकरपूजते हैं जोकि अनुचित है।

10 धार्मिक सुगंध : गुग्गुल, चंदन, गुलाब, केसर, कर्पूर, अष्टगंथ, गुढ़–घी, समिधा, मेहंदी, चमेली। समय समय पर इनका इस्तेमाल करना बहुत शुभ, शांतिदायक और समृद्धिदायक होता है।

10 यम–नियम : 1.अहिंसा, 2.सत्य, 3.अस्तेय 4.ब्रह्मचर्य और 5.अपरिग्रह। 6.शौच 7.संतोष, 8.तप, 9.स्वाध्याय और 10.ईश्वर–प्रणिधान। ये 10 ऐसे यम और नियम है जिनके बारे में प्रत्येक हिन्दू को जानना चाहिए यह सिर्फ योग के नियम ही नहीं है ये वेद और पुराणों के यम–नियम हैं। क्यों जरूरी है? क्योंकि इनके बारे में आप विस्तार से जानकर अच्छे से जीवन यापन कर सकेंगे। इनको जानने मात्र से ही आधे संताप मिट जाते हैं

10 बाल पुस्तकें : 1.पंचतंत्र, 2.हितोपदेश, 3.जातक कथाएं, 4.उपनिषद कथाएं, 5.वेताल पच्चिसी, 6.कथासरित्सागर, 7.सिंहासन बत्तीसी, 8.तेनालीराम, 9.शुकसप्तति, 10.बाल कहानी संग्रह। अपने बच्चों को ये पुस्तकें जरूर पढ़ाए। इनको पढ़कर उनमें समझदारी का विकास होगा और उन्हें जीवन में आगे बढ़ने की प्रेरणा मिलेगी।

10 ध्वनियां : 1.घंटी, 2.शंख, 3.बांसुरी, 4.वीणा, 5. मंजीरा, 6.करतल, 7.बीन (पुंगी), 8.ढोल, 9.नगाड़ा और 10.मृदंग। घंटी बजाने से जिस प्रकार घर और मंदिर में एक आध्यात्मि वातावरण निर्मित होता है उसी प्रकार सभी ध्वनियों का अलग अलग महत्व है।

10 दिशाएं : दिशाएं 10 होती हैं जिनके नाम और क्रम इस प्रकार हैं– उर्ध्व, ईशान, पूर्व, आग्नेय, दक्षिण, नैऋत्य, पश्चिम, वायव्य, उत्तर और अधो। एक मध्य दिशा भी होती है। इस तरह कुल मिलाकर 11 दिशाएं हुई। इन दिशाओं के प्रभाव और महत्व को जानकर ही घर का वास्तु निर्मित किया जाता है। इन सभी दिशाओं के एक एक द्वारपाल भी होते हैं जिन्हें दिग्पाल कहते हैं।

10 दिग्पाल : 10 दिशाओं के 10 दिग्पाल अर्थात द्वारपाल होते हैं या देवता होते हैं। उर्ध्व के ब्रह्मा, ईशान के शिव व ईश, पूर्व के इंद्र, आग्नेय के अग्नि या वह्नि, दक्षिण के यम, नैऋत्य के नऋति, पश्चिम के वरुण, वायव्य के वायु और मारुत, उत्तर के कुबेर और अधो के अनंत।

10 देवीय आत्मा : 1.कामधेनु गाय, 2.गरुढ़, 3.संपाति–जटायु, 4.उच्चैःश्रवा अश्व, 5.ऐरावत हाथी, 6.शेषनाग–वासुकि, 7.रीझ मानव, 8.वानर मानव, 9.येति, 10.मकर। इन सभी के बारे में विस्तार से जानना चाहिए।

10 देवीय वस्तुएं : 1.कल्पवृक्ष, 2.अक्षयपात्र, 3.कर्ण के कवच कुंडल, 4.दिव्य धनुष और तरकश, 5.पारस मणि, 6.अश्वत्थामा की मणि, 7.स्यंमतक मणि, 8.पांचजन्य शंख, 9.कौस्तुभ मणि और 10.संजीवनी बूटी।

मर्यादा पोरुषोत्तम श्रीराम

कालिका प्रसाद सेमवाल
उत्तराखंड

जन –जन के नायक है
मानव धर्म निभाने वाले,

दीन दुखियों के तारक है
दशरथ नंदन अवध बिहारी,

सबके कल्याण कर्ता है
भवसागर पार लगाने वाले,

सब को सद् बुद्धि देते है
सदगुणों की खान हो श्रीराम,

जन –जन के दुखहर्ता है
मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम,

राम सा सुंदर नाम न कोई
जीवन नैया पार लगा दे,

सियाराम जी के चरणों में
नित ध्यान लगाना चाहिए,

हर घर में समृद्धि लाए
छल –छदमों से दूर रहेगें,

भारत माता के रक्षक है
मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम,

मेरे भारत की पहचान है
मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम।

राम चरित मानस और परिवार का महत्त्व

डॉ. सन्तोष खन्ना
(वर्ल्ड रिकॉर्ड होल्डर)
वरिष्ठ साहित्यकार एवं प्रधान संपादक : महिला विधि भारती त्रैमासिक पत्रिका
दिल्ली–110088

महाकवि तुलसीदास का महाकाव्य रामचरित मानस विश्व साहित्य का ऐसा महाग्रंथ है जिसका समूचे विश्व में कोई सानी नहीं है। इसमें महाकवि द्वारा प्रतिपादित कालजयी सांस्कृतिक और मानव मूल्य भारतीय मानसिकता में इतने रचे–बसे हैं कि उनकी वर्तमान युग में प्रसांगिकता कम न हो कर बल्कि और बढ़ गई है। आज के भूमंडलीकरण, बाजार वाद और बढ़ते उपभोक्तावाद के कारण जब मानवीय मूल्यों का जबरदस्त अवमूल्यन हो रहा है, हिंसा, स्वार्थ और अफरा तफरी का माहौल गर्मा रहा है तो समाज में फैलती हताशा और निराशा के गर्त से निकलने के लिए यह जरूरी हो गया है कि हम अपने पुरातन और सनातन मानव आदर्शो को जीवन में उतारें। प्रश्न उठता है कि हमारे पुरातन और सनातन मानव आदर्श है क्या? कह सकते है कि सनातन धर्म का मूल संस्कार और विचारधारा है श वसुधैव कुटुंबकम् श । सामान्यतया भारतवासी पूरी पृथ्वी और विश्व के सभी मानवों को एक परिवार की तरह मानते हैं। इस संबंध में पूरा मंत्र देखिए –

'अयम् निजः पेरो वेती गणना लघुचेतसाम्। उदार चरितानां तु वसुधैव कुटुंबकम्।'

यह मंत्र महा उपनिषदों और अन्य ग्रंथों में विद्यमान है। यह मंत्र भारतीय प्राचीन संस्कृति और सनातन धर्म की मूल भावना को प्रतिपादित करता है । इस मंत्र का मूल भाव यह है कि भारतीय धर्म, भाषा, जाति पाति, क्षेत्र और देश के भेदभाव के बिना संपूर्ण पृथ्वी और मनुष्य जाति को एक परिवार मानते हैं। वसुधैव कुटुंबकम का मंत्र यहां के निवासियों का आधारभूत अध्यात्म है, सोच है, दर्शन है, जीवन शैली है। इसी संस्कार ने भारतीयों में इतना घर कर लिया है कि भारत ने कभी किसी अन्य देश को अपने आधिपत्य और अधिकार में लेने के के लिए कभी किसी पर आक्रमण नहीं किया। समय–समय पर बाहरी आक्रांता भारत पर आक्रमण कर इस देश को अपने आधिपत्य में लेते रहे तो भी भारत ने इसी उदार और उदात्त सोच के कारण स्वयं को कभी यह युयुत्सु संस्कार नहीं दिया। यह उसकी शक्ति कहो या कमजोरी, वह बाहरी आक्रांताओं से एकजुट होकर उनसे लोहा नहीं ले सका चाहे उसके लिए उसे सदियों तक कितने ही विपरीत परिणाम क्यों ना भुगतने पड़ें हों। बाहरी आक्रांताओं ने न केवल इस देश को लूटा और सभ्यता और संस्कृति को नष्ट करने का निरंतर प्रयास किया, यहां की धार्मिक मान्यताओं को कुचलने के लिए यहां के हमारे देशवासियों का धर्म परिवर्तन किया। इतिहास गवाह है कि पहले आक्रांताओं ने यहां के वासियों का धर्म परिवर्तन कर उन्हें इस्लाम धर्म में शामिल कर लिया। बाद में इसाई मिशनरियों ने भी यहां के लोगों को ईसाई बनाना शुरु किया। कह सकते हैं यह प्रक्रिया इस समय भी कुछ सीमा तक जारी है।

भारत ने अपनी इस उदात्त संस्कृति के कारण चाहे कितने ही विपरीत परिणाम भुगते हों या भुगत रहा हो, किन्तु वसुधैव कुटुंबकम् का संस्कार हमारी आदत और आचरण में शुमार हो कर रह गया है। इसलिए मध्यकाल के अंधे युग में जब महाकवि तुलसीदास राम चरित मानस की रचना कर रहे थे तो भी वह श्सर्वभूतहिते रत्ताश की भावना का महिमामंडन कर रहे थे। वह मानस में श्री राम के मुखारविंद से कहलाते हैंय

परहित सरिस धर्म नहिं भाई। पर पीड़ा सम नहीं अधमाई।

अर्थात् दूसरों की भलाई के समान दूसरा कोई धर्म नहीं है। जो व्यक्ति दूसरों को सुख पहुचाता है, दूसरों की भलाई कर के प्रसन्न होता है, उसके समान संसार में कोई भी व्यक्ति सुखी नहीं है और दूसरों को पीड़ा पहुंचाना बहुत बड़ा पाप है। मनुष्य की यही भावना उसे भ्रातृत्व की भावना से जोड़ती है। विश्व बन्धुत्व की भावना का विकास ही अन्ततः विश्व शान्ति एवं प्रेम की स्थापना को सम्भव कर सकता है। इसी भावना को आधार बनाकर गोस्वामी

तुलसीदास ने पारिवारिक मूल्यों को इतना उदास रूप दे दिया है क्योंकि परिवार के अंदर रहकर ही मनुष्य का पर उपकार की भावना से साक्षात्कार होता है। परिवार में परहित की यही भावना का विस्तार विश्व परिवार की भावना का रूप ले लेता है। परिवार विश्व की वह लघु स्थली है जहां मनुष्य में उदात्त भावनाओं का परिपाक होता है। तुलसीदास ने अपने पात्रों के माध्यम से परिवार में प्रेम, स्नेह त्याग और अन्य उच्च कोटि के सदाचार और शिष्टाचार का प्रतिपादन किया हैं। तुलसी माता –पुत्र, पिता –पुत्र, भाई –भाई, पति–पत्नी, मित्र –मित्र, ससुर –बहू, सास– बहू ,भाभी –देवर आदि रिश्तों में उदात्त मूल्यों के माध्यम से एक आदर्श व्यवस्था चाहते हैं।

राम विश्व संस्कृति के अप्रतिम महामानव है। यद्यपि मानस में मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम का ऐसा चरित्र चित्रण किया गया है कि वह न केवल आदर्श पुत्र हैं, आदर्श पति हैं, आदर्श भाई हैं मित्र हैं यहां तक कि वह दुश्मन के प्रति भी आदर्श व्यवहार करते हैं। इसी प्रकार, नारीत्व का उदात्त आदर्श सीता का चरित्र समूची मानव जाति के लिए अत्यंत प्रेरक है। इस तरह तुलसी ने मानस में जिन प्रकार पारिवारिक और मानव मूल्यों की स्थापना की है वे परिवार,समाज, देश और विश्व के लिए आज भी बहुत उपयोगी हैं। राम जैसा पुत्र बहुत पुण्य प्रताप से मिलता है। मानस में तुलसीदास सन्तान के मां बाप के प्रति कर्तव्य को रेखांकित करते हुए राम से कहलाते हैं–

सुनु जननी सोइ सुतु बड़भागी, जो पितु मातु वचन अनुरागी।
तनय मातु पितु तोष निहारा, दुर्लभ जननी सकल संसारा।

अर्थात् हे माता! सुनो वही पुत्र भाग्यशाली हैं जो माता–पिता के वचनों का पालन करने वाला है। हे माता ! माता पिता को संतुष्ट रखने वाला पुत्र सारे संसार में दुर्लभ है। आज के भौतिकवादी युग में जब पारिवारिक रिश्ते धन, बल और बाजार के आधार पर तय होने लगे हैं, ऐसे में हम रामचरितमानस का अनुशीलन करेंगे तो हमारी चेतना का भी परिपाक होगा और हम मानव मूल्यों से प्रेरित होकर उन्हें अपने जीवन में उतारने के लिए क्रियाशील हो उठेंगे ऐसे में मानस में प्रतिपादित मूल्य नई आशा की किरण लेकर आते हैं।

राम का राज्याभिषेक होने वाला है और उसे मिलता है 14 वर्ष का बनवास। वर्तमान काल में जो परिवारों की स्थिति हो गई है उसमें आप सोच भी नहीं सकते कोई बेटा राम जैसे त्याग की भावना से संप्रक्त होगा। आजकल मां बाप को बच्चों से ही ड्र लगने लगा है। आज इस कलिकाल में संतान को उनके भले के लिए समझाना भी मुश्किल हो गया है। मां बेटे की भलाई के लिए उससे कहती है कि वह कंप्यूटर पर खेल में समय न गंवा कर अपनी पढ़ाई की ओर ध्यान दे। बेटे को अपनी मां का मना करना अच्छा नहीं लगता और वह मां की हत्या ही कर देता है। कोई दूसरा बेटा मां से नशे करने के लिए पैसे मांग रहा है और मां जब पैसे देने से मना करती है तो वह उसे चाकू से गोद देता है। प्रायः ऐसी घटनाएं रोज पढ़ने सुनने में आ रही हैं। आज की संतान को हम सद्संस्कार नहीं दे पा रहे हैं। उधर मानस के राम इतने संस्कारी हैः

प्रात काल उठ के रघुनाथा , मातु पितु नावहिं माथा।

इसी प्रकार, नारी के कर्त्तव्य के बारे में मानसकार ने राम से कहलाया गया है कि नारी का धर्म है वह सास ससुर का पूरा सम्मान करें–

एहि ते अधिक धरम नहीं दूजा सादर सास ससुर पद पूजा।

इसी तरह मानस कार ने सास ससुर के बहुओं के प्रति धर्म का भी उल्लेख किया है। दशरथ अपनी कौशल्या आदि रानियों से कहते हैं –

वधु लरिकनी पर घर आई/राखेहु नयन पलक की नाई।

अर्थात् बहू अभी बच्ची है पराए घर से आई हैं इनको इस तरह से रखना जैसे नेत्रों को पलकें रखती हैं अर्थात् जैसे पलकों में आंखे सुरक्षित रहती है, सास सुसर का अपनी बहुओं के प्रति यदि इसी प्रकार का भाव हो तो पारिवारिक जीवन कितना खुशहाल हो जाए। आजकल परिवारों में सास और बहू के कारण घरों में अशांति देखने को मिलती है। बहूएं भी संयुक्त परिवार में न रहकर अपना अलग रहना चाहती है अथवा सास ससुर उन्हें वह स्नेह और मान सम्मान नहीं दे पाते जो वे अपनी बेटियों को देते हैं जबकि बहू अपना मायका छोड़ कर एक पराए घर को अपनाती है इस संबंध में आज के लिए मानस से बहुत कुछ सीखा जा सकता है।

मानस में भाईयों के बीच परस्पर प्रेम प्यार भी एक मिसाल है।जब राम को चौदह वर्ष का बनवास मिलता है तो लक्ष्मण उसके साथ जाने की जिद्द करते हैं और उनके साथ जा कर ही मानते हैं।राम का भारत के प्रति स्नेह और विश्वास अप्रतिम है। जब भरत रामचंद्र को वन से वापस चलने के लिए मनाने उनके पीछे बन में जाते हैं तो लक्ष्मण उनकी भ्रातृप्रेम भावना को समझ नहीं पाते और वह भरत के बारे में टिप्पणी करते हैं कि भरत अयोध्या का राज पा कर राजमद में अंधा हो रहा है तो राम का भारत के प्रति विश्वास देखिए। राम कह उठते हैं,:

भरतहि होई न राजमद, विधि हरि हर पद पाई
कबहुं कि कांजी सीकरन, हरि सिंधु बिनसाई।

अर्थात् श्री राम चन्द्र जी को भरत के प्रेम पर इतना विश्वास है कि वह कह उठते हैं कि अयोध्या के राज की तो बात ही क्या, अगर भरत ब्रह्मा, विष्णु या महेश का पद भी पा ले तो भी उन्हें राज मद हो ही नहीं सकता। भरत भी राम के उनमें अटूट विश्वास पर कैसे खरा उतरते हैं वह राजगद्दी पर श्री राम की खड़ाऊ रख कर अयोध्या का राज काज चलाते रहे।

इस संदर्भ में राम भरत मिलाप भ्रातृप्रेम, स्नेह और त्याग का अनूठा उदाहरण प्रस्तुत करता है। महाकवि तुलसीदास ने रामचरित मानस में जिन पारिवारिक मूल्यों को जिस ढंग से प्रस्तुत किया है कि उसकी वजह से मानस जनमानस में घर कर गया है। यद्यपि आज के भूमंडलीकरण और उपभोक्तावाद और बाजार वाद के कारण परिवार और परिवारिक मूल्य खतरे में है, इसके लिए यदि हम रामचरित मानस का श्रद्धापूर्वक और गंभीरता से अनुशीलन करें तो यह विश्वासपूर्वक कहा जा सकते हैं कि हम परिवार और समाज में सार्थक बदलाव ला सकते हैं। रामचरित मानस हमारी प्राचीन संस्कृति की ऐसी मूल्यवान मंजूषा है जो हमें हमेशा अपनी समृद्धि से आप्लावित करती रहेगी।

अप्रयुक्त वस्तुएं हों अथवा ज्ञान उनका नष्ट हो जाना स्वाभाविक है

अनिवार्य है अर्जित ज्ञान की पुनरावृत्ति

सीताराम गुप्ता
पीतम पुरा, दिल्ली

मानस के अरण्यकाण्ड में एक स्थान पर गोस्वामी तुलसीदास लिखते हैं – **सास्त्र सुचिंतित पुनि पुनि देखिअ।** जिन शास्त्रों का हमने भली–भाँति चिंतन–मनन किया है उन्हें बार–बार देखते रहना चाहिए। याद होने पर भी उनकी पुनरावृत्ति होती रहनी चाहिए। गोस्वामी तुलसीदास ने ऐसा क्यों कहा? जो शास्त्र हम अच्छी प्रकार से पढ़ चुके हैं उनको बार–बार पढ़ने अथवा दोहराने की क्या आवश्यकता है? इस बात का सबसे सरल उत्तर तो यही होगा कि यदि हम पूर्व में पठित किसी भी सामग्री अथवा शास्त्रों को नहीं दोहराएँगे तो उनके विस्मृत हो जाने की प्रबल संभावना बनी रहती है। यदि हम किसी प्रकार का ज्ञान अथवा विद्या प्राप्त करते हैं तो उसका उपयोग तभी संभव है जब वो हमें याद भी रहे। परीक्षा की दृष्टि से भी ये बहुत महत्त्वपूर्ण होता है। किसी उपयोगी से उपयोगी विद्या को प्राप्त करने के बाद अभ्यास अथवा पुनरावृत्ति के अभाव में उसे भूल जाना समय व संसाधनों का दुरुपयोग ही कहा जाएगा।

अपने घरों में हम अनेक प्रकार की वस्तुओं अथवा उपकरणों को प्रयोग में लाते हैं। वे सालों तक हमारे काम आते रहते हैं लेकिन यदि किसी कारण से किसी उपकरण का प्रयोग लंबे समय तक न किया जाए तो बिना प्रयोग किए ही उसके खराब हो जाने की संभावना बहुत बढ़ जाती है। कई बार हम भूल तक जाते हैं कि ऐसा कोई उपकरण हमारे घर में रखा भी है। कुछ ऐसा ही प्राप्त अथवा संचित ज्ञान व कुशलताओं के साथ होता है अत: मात्र सीखना ही पर्याप्त नहीं होता अपितु उसे याद रखना व व्यवहार में लाना भी अनिवार्य होता है। एक बार जो चीज हमारे व्यवहार में आ जाती है उसे याद रखना अत्यंत सरल हो जाता है और याद रखने के लिए किसी बात को दोहराते रहने से अधिक अच्छी बात कोई अन्य हो ही नहीं सकती। हम जो भी उपकरण खरीदें न केवल उन्हें ही निरंतर उपयोग में लाएँ अपितु हम जो सीखें उसे भी याद रखें व व्यवहार में लाएँ।

कई व्यक्ति जीवन में पर्याप्त स्वाध्याय करते हैं तो क्या जितना भी स्वाध्याय किया है उसे पूरा का पूरा याद रखना अनिवार्य अथवा अपेक्षित है? हम जितना पढ़ते हैं अथवा जितना चिंतन करते हैं वो सभी अत्यंत उपयोगी हो ये संभव ही नहीं लेकिन हमें अच्छी बातें याद रखनी ही होंगी क्योंकि उन्हीं से जीवन के हर क्षेत्र में उत्कृष्टता संभव है। जब हम कुछ अच्छा पढ़ते–लिखते अथवा चिंतन करते हैं उसे दोहराते रहने से वे बातें स्वाभाविक रूप से हमारे आचरण में आ जाती हैं लेकिन यदि हमें इन अच्छी बातों की जानकारी ही नहीं होगी या ये अच्छी बातें कंठस्थ ही नहीं होतीं तो वे हमारे आचरण अथवा व्यवहार में कैसे आ सकेंगी व कैसे उसे उत्तम बना सकेंगी? ऐसे व्यक्तियों को भी जो पर्याप्त स्वाध्याय करते रहते हैं अच्छी बातों को अपने

सामने रखने का प्रयास करना चाहिए जिससे वे उनके जीवन को सकारात्मकता प्रदान कर उनके व्यक्तित्व को प्रभावशाली व उनके आचरण को सात्विक बना सकें और इसके लिए शास्त्रों की अच्छी बातों को बार–बार पढ़ने अथवा उन्हें दोहराते रहने के अतिरिक्त अन्य कोई प्रभावशाली उपचार दिखलाई नहीं पड़ता।

जिस प्रकार से मिष्टान्न अथवा अन्य अपेक्षित उपयोगी भोजन का उपभोग करने के लिए वो हमारे समक्ष होना अनिवार्य है उसी प्रकार से जीवन की गुणवत्ता को सुधारने अथवा उसे अक्षुण्ण बनाए रखने के लिए हमने जो भी अच्छा सीखा है अथवा जो स्वाध्याय अथवा चिंतन किया है वो भी हमारे सम्मुख ही रहना चाहिए। यदि ऐसा होगा तो देर–सवेर उसका प्रभाव भी अवश्य ही हम पर पड़ेगा। साथ ही आवश्यकता पड़ने पर उसका उपयोग भी संभव हो सकेगा। यदि समय पर किसी चीज का उपयोग न हो पाए तो उसका होना या न होना बराबर है। यदि हमें मिठाइयाँ खानी हैं तो मिठाइयाँ लाकर रखनी होंगी और यह तभी संभव है जब हम याद रखें कि हमें मिठाइयाँ लानी हैं अथवा बनानी हैं। इसके लिए हमें मिठाई शब्द याद रखना होगा और तब याद रखना होगा जब तक उसकी छवि हमारे मन पर अंकित न हो जाए।

कहने का तात्पर्य यही है कि किसी भी सूचना, ज्ञान अथवा कुशलता के व्यावहारिक उपयोग अथवा सदुपयोग के लिए उसको विस्मृति के गर्भ में जाने से रोकना अनिवार्य है और इसके लिए उसकी पुनरावृत्ति होती रहनी चाहिए। जब उपयोगी की बार–बार पुनरावृत्ति होगी तो तो अनुपयोगी स्वयं ही विस्मृत हो जाएगा क्योंकि अनुपयोगी के लिए स्थान ही नहीं बचेगा। भूलना भी मनुष्य की स्वाभाविक प्रवृत्ति है अतः जिस ज्ञान अथवा कुशलताओं का हम उपयोग नहीं कर पा रहे हों उसे विस्मृत होने से पूर्व दूसरों को दे दें अथवा सिखा दें। कहा गया है कि हम जितना अधिक दूसरों को देते हैं उससे अधिक ही लौट कर हमारे पास आता है। ज्ञान अथवा कुशलताओं के संबंध में भी ये बात उतनी ही सही है। जो दूसरों को सिखाते रहते हैं उनकी स्मृति न केवल अक्षुण्ण बनी रहती है अपितु वे स्वाभाविक रूप से अधिकाधिक अनुभवी भी होते जाते हैं। ये एक ऐसी प्रक्रिया है जो व्यक्ति को हमेशा सक्रिय व सचेत बनाए रखने में सहायक होती है।

मन का ये स्वभाव है कि उसमें कुछ न कुछ नया आता रहता है जो अच्छा अथवा बुरा दोनों प्रकार का हो सकता है। बुरे अथवा अनुपयोगी से बचने के लिए भी हमें अच्छे अथवा उपयोगी को प्राथमिकता देनी पड़ेगी। अच्छी बातों को सामने रखकर उनके लिए मन की कंडीशनिंग करनी पड़ेगी। अच्छी बातें जब तक हमारे व्यवहार में न आ जाएँ उन्हें याद रखना होगा। उन्हें पहाड़ों की तरह सही–सही रटना और याद रखना होगा। यदि हम पहाड़े भूल जाएँ तो गणित के आसान से आसान पश्न भी हल नहीं कर पाएँगे। जीवन के गणित को ठीक से हल करने के लिए, उसमें अच्छे अंक प्राप्त करने के लिए हमें अच्छी बातों अथवा जीवनोपयोगी सूत्रों को भी पहाड़ों की तरह ही सदैव याद रखना होगा। शास्त्रों की उपयोगी बातों को बार–बार दोहराने से जीवन की दशा व दिशा दोनों के बदल जाने में संशय की कोई संभावना नहीं।

सरस्वती वन्दना

विवेक चतुर्वेदी
स्वतंत्र लेखन

वाग्देवी सुनो प्रार्थना
आप स्वर दो तो गाते हैं हम
आप ही के दिये राग से
मन के दीपक जलाते हैं हम
वाग्देवी सुनो प्रार्थना ....

आपकी स्तुति में ऋचा मन्त्र पढ़ती रहे साम का
युग हो आरम्भ मस्तिष्क में चेतना तेरे व्यायाम का
ऐसा वर शारदे से मिले सत्य जानें सभी राम का

राम सरयू में डूबे मगर
राम में डूब जाते हैं हम
वाग्देवी सुनो प्रार्थना ....

कृष्ण ने जैसे कुरुक्षेत्र में दिव्य दर्शन दिए पार्थ को
माँ प्रकाशित करो इस तरह आप भी मेरे सत्यार्थ को
ज्ञान से नष्ट करने लगूँ मैं निजी हित के हर स्वार्थ को

होंठ की भागवत पे रखी
बाँसुरी को बजाते हैं हम
वाग्देवी सुनो प्रार्थना ....

आप वीणा बजाती हो तो नाचती है बसंती पवन
देख कर आम के बौर को फूल जैसा महकता है मन
काम के देव की चाह में पूर्ण होने दो रति का हवन

हंस पे माँ हृदय के तुम्हें
बैठने को बुलाते हैं हम
वाग्देवी सुनो प्रार्थना ....

कृष्ण चिंतन : प्रेम, राजनीति एवं दर्शन

जीवन दर्शन की भाँति गीता अध्यात्म दर्शन का अपूर्व ग्रंथ है। यह हमारे सम्मुख सम्पूर्ण योगशास्त्र को प्रस्तुत करती है जो विशाल और लचकीला है, जिसमें आत्मा के विकास और ब्रह्म तक पहुँचने के विविध दौर सम्मिलित हैं। विविध मार्ग हैं - ज्ञानयोग, भक्तियोग और कर्मयोग। ये तीनों अलग-अलग होकर भी अंत में एक बिंदु पर आकर मिल जाते हैं।

डॉ. शकुंतला कालरा
एसोसियेट प्रोफेसर
मैत्रेयीकॉलेज,
दिल्ली विश्वविद्यालय
दिल्ली

प्रेम, राजनीति एवं दर्शन के क्षेत्र में कृष्ण का अनन्य स्थान है। कृष्ण अर्थात् प्रेम, राजनीति एवं दर्शन की त्रिवेणी। इनसे सम्बद्ध श्री कृष्ण के विचार कालजयी हैं। कृष्ण मात्र व्यक्ति नहीं, दर्शन एवं विचारों का अधिष्ठान है। एक चिंतन पद्धति है। यह पश्न किया जा सकता है कि आज की समस्याओं, उत्तरदायित्वों का स्वरूप इतना भिन्न है कि हज़ारों वर्ष पूर्व लिखी गई गीता उसमें प्रतिपादित विचार आज के युग का मार्ग–दर्शन कैसे कर सकते हैं? उत्तर है श्री कृष्ण की वाणी का काल एवं सीमाओं से परे होना। वह एक युग की नहीं युग–युग की वाणी है। गीता में प्रतिपादित श्री कृष्ण की चिंतन पद्धति सचमुच असाधारण है। उसमें ताजगी है। उसका सार नवीन है। शाश्वत है। कालजयी है। राष्ट्र तथा संस्कृति के जीर्णोद्धार अथवा नवजीवन के लिए उसकी आज भी उतनी ही आवश्यकता है क्योंकि यह अन्तस्तल में निहित स्वयं प्रकाश सत्य को शब्द रूप आविश्कारक है। यह ठीक है कि हर युग की अपनी कुछ विशेषताऐं होती हैं और अपनी ही समस्याऐं हैं जो युगीन सामाजिक, आर्थिक एवं भौगोलिक स्थितियों से बहुत प्रभावित रहती हैं पर सत्य तीनों कालों में एक रहता है।

सांस्कृतिक प्रदूषण और अपसंस्कृति के इस युग में समाज को कृष्ण के संदेश की, जो अतीत के पृष्ठों में खो चला है। उसे फिर से देखने की आवश्यकता है। कृष्ण की बाललीलाओं द्वारा वात्सल्य रस का अजस्र प्रवाह उनके युग में बहा वह कहीं बिरल होता जा रहा है। कृष्ण पर्याय है आंगन की किलकारी का, जो हर घर में किलकती है। वह घुटनों के बल चलकर रेवु–तन मंडित हो माता के हृदय को आहलादित करना चाहता है पर यशोदा आज उसे दिखाई नहीं दे रही। वह मल्टी नेशनल कंपनी में ओझल होती जा रही है। मल्टी मिलियन बनने के सपने देखने वाली माँ आज धाय माँ को दूध का डिब्बा एवं प्लासटिक की बोतल देकर अपने ममत्व और दुलार को..... माँ की बोतल की जगह उसे मिली है धाय माँ द्वारा संचालित एक खूबसूरत खिलौनों से सुसज्जित प्रेम जिसमें वह घूमता भी है और सोता भी है। आधुनिकता की यह कैसी बाढ़ है जिसमें हम–पत्नी बहते चले जा रहे हैं। अपने आर्थिक विकास में संतान को बाधक मानने वाले ये दम्पति संतान के लालन–पालन से प्राप्त नैसर्गिक सुख से वंचित

होते जा रहे हैं। किसी माँ के पास समय नहीं कि वह उसे थपकी देकर सुलाए। कोई पिता उसका घोड़ा बनकर उसे घुमाता नहीं। माता–पिता की व्यस्त जिंदगी में संतान के लिए समय नहीं। कृष्ण की लीलाऐं संदेश देती हैं उन दंपतियों को कि वे लौट आऐं उस भूमि पर जहाँ कान्हा रूठता है और यशोदा तथा नंद बाबा उन्हें मनाते हैं। एक को रूठने में आनंद आता है तो दूसरे को मनाने में। सूरदास का काव्य वात्सल्य की अनुपम निधि है।

प्रेम जीवन का सार है। कृष्ण की माधुर्य भाव की लीलाओं में ध्वनित संदेश आज भी उतना ही प्रासंगिक है। हरिऔध की 'प्रिय प्रवास' धर्मवीर के 'अंधायुग', 'कनुप्रिया', डॉ. कृष्णनंदन पीयूष की 'योग निद्रा' आदि काव्यों में श्री कृष्ण के इसी प्रेमी रूप के दर्शन होते हैं। ब्रज भूमि के गोप सखा, गोपीवल्लभ, राधा की कंत उनकी भावनाओं की उपेक्षा कर मथुरा चले जाते हैं। मथुरा से फिर वह द्वारका चले जाते हैं। कृष्ण इतिहास–निर्माण के पीछे लगकर अपनी प्रिया राधा को भुला देते हैं। इतिहास निर्माण के पीछे लगकर 'कनु' एकाकी रह जाते हैं। कृष्ण चरित्र के इस पक्ष से कवि ने यह संदेश दिया कि इतिहास–निर्माण की चिंता में व्यक्ति जब अपने हृदय पक्ष की उपेक्षा करता है तब इतिहास की शक्तियों के सम्मुख वह हार जाता है और उसका जीवन सारहीन हो जाता है। अपने युग का नेता श्री कृष्ण मृत्यु की घड़ी में मनुष्य के अनादिकाल से उत्पीड़क अकेलेपन को भोगता है। मृत्यु–बोध की उस बेला में उसे जीवन की सभी उपलब्धियां निरर्थक लगती हैं। कोई विचार उसे आश्वस्त नहीं कर पाता। मृत्यु के समय के अकेलेपन की व्याकुलता को दूर नहीं कर पाता। कृष्ण अपने हत्यारे व्याध के सान्निध्य में उस अकेलेपन को भुलाने की मिथ्या कोशिश करते हैं –

पास आ बैठो तनिक
जिसकी बाँसुरी पर कभी नाचा था वृन्दावन
समस्त विश्व,
तीन भुवन।
वही कृष्ण आज चाहता है,
सान्निध्य तेरा,
क्योंकि वह अकेला है।

मनुष्य के जीवन की यही बिडम्बना है कि जिसके प्रेम द्वारा उसे जीवन की सार्थकता या पूर्णता मिलती है वह अधिकार–लिप्सा में उसकी उपेक्षा कर देता है। श्री कृष्ण ने इसी हृदय पक्ष की उपेक्षा की है –

मथुरा का राज भवन
पाकर सब भूल गया,
ब्रज की उन गलियों को,
मन के विकल्पों के बीच कहीं खो बैठा
पथ की बाधा कहकर,
अपनी ही राधा को।

युद्ध, राजनीति एवं दर्शन के प्रलोभन में उसने अपने सहज प्रेम को भुला दिया। राधा की बाहों से निकलकर कनु महान युग नेता भले ही बन गया किंतु दोनों का व्यक्तित्व टूटकर बिखर गया।

यदि इसका दूसरा पक्ष देखें तो कहेंगे कि कृष्ण का प्रेम व्यष्टि की सीमा से निकल समष्टि में फैल गया। उन्होंने अपने प्रेम को यशोदा, राधा या नंद बाबा तक ही सीमित नहीं रखा। कृष्ण का प्रेम 'वसुधैवहि कुटुम्बकम्' बन गया। इसी से प्रेरित वे पहले ब्रजभूमि छोड़ मथुरा आते हैं और लोकहित के अपने कार्यों को पूरा करके मथुरा को भी छोड़कर द्वारका चले जाते हैं। समाजसेवा, राष्ट्रप्रेम, मानवता, विश्वबंधुत्व आदि जो मूल्य कृष्ण ने हमें दिए उनकी आज पूरे विश्व को आवश्यकता है। व्यक्तिगत प्रेम की बलि देकर युग की मर्यादा का उन्होंने एक साहसी पुरुष की तरह दायित्व उठाया और इतिहास को चुनौती दी तो नियति ही बदल गई। युग पुरुष के सम्मुख नियति झुक गई। नक्षत्रों की दिशा बदल गई –

जब कोई भी मनुष्य
अनासक्त होकर चुनौती देता है इतिहास को
उस दिन नक्षत्रों की दिशा बदल जाती है
नियति नहीं है पूर्व निर्धारित
उसको हर क्षण मानव–निर्णय बनाता–मिटाता है।

युग पुरुष को चाहिए मर्यादा हेतु समस्त धर्माधर्म को धारण करे जैसे कृष्ण ने समस्त शुभाशुभ को धारण किया। पशु जैसी मृत्यु को भी स्वीकारा। कृष्ण की आस्था पर द्वापर जीता था। कृष्ण महज एक शब्द नहीं अपितु प्रेम का एक व्यावहारिक दर्शन बनकर उभरा है।

कृष्ण एक कुशल राजनीतिज्ञ है। उन्होंने राजनीति के सैद्धांतिक तथा व्यावहारिक दोनों रूप प्रस्तुत किए हैं। राजनीति का पुस्तकीय ज्ञान मात्र नहीं दिया वरन् अपने देश के हित के लिए राजनीति संबंधी ज्ञान को अपने व्यवहार में उतारा है। महाभारत, हरिवंश पुराण आदि ग्रंथों में राजनीति के सिद्धांतों को वर्णन किया है। राजा का स्वरूप, राजा के कर्तव्य, शासन–प्रणाली, न्याय एवं दण्ड आदि की अपेक्षित जानकारी दी है। राजा प्रजा का हित चाहने वाला हो। मंत्रिमंडल ऐसा हो जो विशम परिस्थिति में सहयोग दे अपनी मंत्रणा से राजा और राष्ट्र का मार्गदर्शन करे।

स्वामी प्रणवानंद और क्रिस्टोफर ईशवुर्ड द्वारा लिखित भगवद्गीता की भूमिका में कहा गया है – "गीता का न केवल भारतीयों के लिए वरन् सम्पूर्ण मानव जाति के लिए स्थायी मूल्य है।" इस तरह गीता उस धर्म का प्रतिनिधित्व करती है जिसमें काल और देश की कोई सीमाऐं नहीं हैं।

गीता कर्म करने का आदेश है। यह मनुष्य को ऐसा जीवन बिताने का उपदेश देता है, जिसमें उसका आन्तरिक जीवन परमात्मा के साथ जुड़ा हो। वह स्वधर्म–पालन करे। स्वधर्म अर्थात् कर्तव्य–पालन। इसे करते समय निराभिमानता, फल– एषणा–त्याग, अनासक्ति, निष्कामता और समर्पण भाव होना चाहिए। गीता का यह दृष्टिकोण सहस्रों वर्षों से नित्य नवीन बना हुआ है। यह एक सार्वभौम–दर्शन है जिसकी प्रासंगिकता ज्यों की त्यों बनी हुई है।

कुछ लोगों ने इसे मृत्यु से पूर्व उस समय के लिए ही उपयोगी मान लिया है, जिसके सुनने से मोक्ष की प्राप्ति होती है। मरणासन्न व्यक्ति इसे न तो सुन पाता है और न इसे समझ पाता है। इसे तो जीवन में सुनने और पग–पग पर अपनाने की आवश्यकता है।

गीता में भक्ति ज्ञान के आधार पर टिकी है। भक्ति ज्ञान की ओर ले जाती है। जब भक्ति प्रबल होती है तब आत्मा में निवास करने वाला भगवान अपनी करुणा के कारण भक्त को ज्ञान का प्रकाश प्रदान करता है और उस ज्ञान के प्रकाश में भक्त समस्त कर्म ईश्वर को समर्पित कर देता है। यानि फल की आसक्ति से रहित होकर कर्म करता है। वह कर्मों का त्याग नहीं करता वरन् इच्छाओं से विरत हो जाता है। गीता इच्छाओं से विरक्त होने का संदेश देती है, कर्मत्याग का नहीं। ■

साये में छाये

सच्चिदानंद किरण
भागलपुर, बिहार

कुछ इसी तरह साहित्य के
साये में छाये रहते––––

मन को अब चाहत की
खबरों से निजात पाने
की एक यही है बचा
पढ़ना लिखना और मन
की मनहरन गीत गाना
ऊंची उड़ान से मुक्त होना।

कुछ इसी तरह साहित्य के
साये में छाये रहते––––

निरजन घनघोर निरवता में
वन की तप–तपस्या के
एकाग्रचित्त होकर ज्योतिर्मय
में साक्षात् भगवान दर्शन
के एक अद्‌भुत अदृश्य
आकृति में संभावी है जीवन।

कुछ इसी तरह साहित्य के
साये में छाये रहते––––

हर संघर्षशील प्रयत्न करने से
तन–मन की अस्थिरता में
एक आदर्श स्थाईत्व बिंदु
पर ज्ञानेज्ञ केन्द्रित हो
जीवन–मंत्र सिद्ध कवच से
शोभित हो मुक्ति मोक्ष प्राप्त होना।

कुछ इसी तरह साहित्य के
साये में छाये रहते––––

भक्त श्रेठ संत एकनाथ

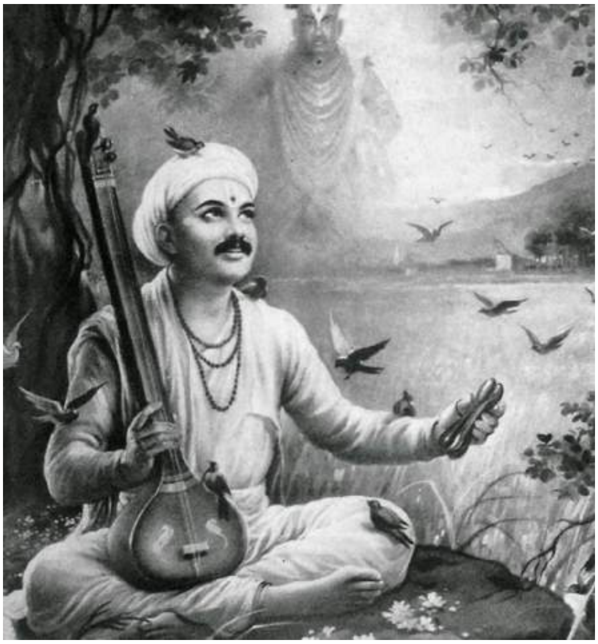

सौ. भावना दामले
स्वतंत्र लेखन
इन्दौर (मध्य प्रदेश)

हमारे देश का साहित्य समृद्ध साहित्य है। इसमें भक्त कवियों की श्रेष्ठ परंपरा रही है। ये भगवान के भक्त होने के साथ साहित्यकार भी थे। उस समय भारत के संतों की भक्ति धारा ने समाज में जागृति लाने का प्रयास किया, सामाजिक तथा जातिगत भेदभाव मिटाने का प्रयास किया। महाराष्ट्र में अनेक प्रसिद्ध संत हुए हैं, उनमें प्रमुख हैं संत एकनाथ। इनके पिता का नाम सूर्य नारायण तथा माता का नाम रुक्मिणी था। उनके कुल में सूर्योपासना परंपरा से चली आ रही थी। भक्ति के संस्कार भी परिवार से मिले थे।

उनके घर के पास जनार्दन स्वामी नामक साधु पुरुष रहते थे। बालक एकनाथ उनके दर्शन के लिए गया, और प्रणाम करके खड़ा रहा। जनार्दन स्वामी को भगवान दत्तात्रेय दर्शन देते थे और उनसे बात भी करते थे। यह बात बालक एकनाथ को पता थी। एकनाथ को देखकर स्वामी जी को आश्चर्य हुआ। स्वामी एकनाथ से उसकी जानकारी पूछते हैं और आने का कारण पूछते हैं। बालक एकनाथ कहता है कि मैं किसी से लड़कर या गुस्सा होकर नहीं आया हूं। मेरे मन में विचार आते हैं कि मनुष्य के मन में क्रोध मोह तथा लोभ आदि विकार क्यों आते हैं? इस संसार की सभी वस्तुएं नाशवान हैं, इनसे बचने के लिए मुझे क्या करना चाहिए? आत्महित के लिए क्या करना चाहिए? मैं आपको मेरा गुरु मानकर आपकी शरण में आया हूं। ऐसा कह कर बालक एकनाथ ने जनार्दन स्वामी जी के पैर पकड़ लिए। जनार्दन स्वामी ने उन्हें अपने पास रहने की अनुमति दे दी। बालक एकनाथ की सेवा तथा भक्ति देखकर स्वामी जी को आश्चर्य लगता। वे सोचते यह साधारण बालक नहीं है, यह महान भगवान भक्त होगा।

जनार्दन स्वामी जी ने एकनाथ को हिसाब रखने का कार्य दिया और कहा कि यह काम अच्छी तरह से करने पर तुम ज्ञानी हो जाओगे। एकनाथ ने कहा मैं हिसाब भी रखूंगा और आपकी सेवा भी करता रहूंगा। स्वामीजी ने सोचा यह बहुत चतुर तथा होशियार है इसे भगवान के स्वरूप का ज्ञान कराना चाहिए। स्वामी जी ने आज्ञा दी कि रोज हिसाब लिख कर मुझे बताया करो। एकनाथ दिनभर अन्य कार्य करता और रात को हिसाब लिखता। एक बार

हिसाब में खर्चा लिखना रह गया और एक पैसे का फर्क आया। इस गलती को ढूंढने के लिए बिना खाए पिए हिसाब करता रहा। आधी रात बीतने के बाद गलती पकड़ में आयी। खुशी से ताली बजाते हुए वह खड़ा हो गया। इतने में उनके गुरु जनार्दन स्वामी उनके सामने आ गये। एकनाथ ने कहा एक पैसे की गलती हुई थी वह मिल गई इसलिए मुझे खुशी हुई। जनार्दन स्वामी ने कहा, जितनी तन्मयता तुमने एक पैसे के हिसाब के लिए लगाई उतनी तन्मयता और भक्ति भगवान श्री कृष्ण में लगाओगे तो तुम्हारा आत्महित होकर कल्याण होगा। इतना सुनते ही एकनाथ का शरीर रोमांचित हो गया। गुरु कृपा और गुरु के उपदेश से उनके ज्ञान चक्षु खुल गए। उन्होंने गुरु के चरणों का आलिंगन किया। गुरु ने उपदेश दिया कि जैसा यह हिसाब लिखते हो वैसा ही अपने जीवन का हिसाब लिखा करो। इतना सुनते ही एकनाथ जी ने जीवन पर एक सुंदर रूपक लिख कर गुरु को सुनाया और वंदन किया। एकनाथ की भक्ति तथा अधिकार देखकर जनार्दन स्वामी ने उन्हें 'रामकृष्ण' इस नाम मंत्र का उपदेश दिया। एकनाथ जी ने बड़ी श्रद्धा और भक्ति से इस मंत्र का जाप करना शुरू किया। इसके प्रभाव से उनका आध्यात्मिक अधिकार बढ़ता गया।

उनके गुरु जनार्दन स्वामी ने कहा मैं जल्दी ही तुम्हें भगवान दत्तात्रेय के दर्शन करवाने ले जाऊँगा। भगवान हर घड़ी अपना रूप बदलते हैं। लोग भ्रम में पड़कर उनको पहचान नहीं पाते हैं। धीर गंभीर लोग ही उनको पहचान सकते हैं। जब मैं उनसे बातें करूंगा तब तुम झट से उनके पैर पड़ कर उनको प्रणाम करना। एकनाथ जी कहते हैं मेरे मन में भी भगवान के दर्शन की लालसा है पर संकोच के कारण बोल नहीं पाया। एक दिन जनार्दन स्वामी उन को जंगल में ले जाते हैं। वहां पर मुसलमान घुड़सवार के रूप में भगवान दत्तात्रेय उनसे मिलने आते हैं। उन्हें देखकर एकनाथजी डर जाते हैं। भगवान दत्तात्रेय अपने संकल्प से पकवान उत्पन्न करते हैं और सोने की थाली में जनार्दन स्वामी के साथ खाना खाते हैं। भगवान दत्तात्रेय स्वामी जी से कहते हैं कि जनार्दन, वह जो दूर लड़का खड़ा है तुम्हारी इच्छा हो तो उसे भी खाना खाने बुलाओ। यह सुनकर एकनाथजी डर के मारे और दूर चले जाते हैं। इधर दत्तात्रेय भगवान अदृश्य हो जाते हैं। एकनाथजी आश्चर्यचकित हो जाते हैं। उनके गुरु जनार्दन स्वामी कहते हैं कि तुमने भगवान को नहीं पहचाना और यह अवसर खो दिया। एकनाथ जी कहते हैं गुरु जी आपकी कृपा से ही मुझे भगवान दत्तात्रेय के दर्शन होंगे। दूसरी बार जंगल में जाने पर मलंग वेश में भगवान दत्तात्रेय उन दोनों से मिलने आये। इस बार एक मिट्टी के बर्तन में दोनों भोजन करने लगे। भगवान ने कहा उस तरफ कौन खड़ा है उसे बुलाओ। पास आने पर एक नाथ जी ने सोचा फकीर के साथ कैसे खाना खाऊं? जनार्दन स्वामी जी ने संकेत भी किया कि यही भगवान दत्तात्रेय है। फिर भी डर कर एकनाथ जी ने कहा मैं खाना नहीं खाऊंगा मुझे प्रसाद दीजिए। एकनाथ जी प्रसाद लेकर बैठ गए। फिर दत्तगुरु ने उन्हें अपने पास बुलाया। एकनाथ जी ने उनकी चरण वंदना की। भगवान दत्तात्रेय ने उन्हें आशीर्वाद दिया और वरदान दिया कि भागवत पुराण का विस्तृत अर्थ समझाने वाला प्रसिद्ध ग्रंथ लिखोगे। सरस भावार्थ रामायण की रचना करोगे। हरिभक्ति के अनेक पदों की रचना करोगे। तुम्हारी वाणी श्रवण करने से बहुत से लोगों का उद्धार होगा। इस प्रकार वरदान देकर भगवान अदृश्य हो गये। भगवान के दर्शन से रोमांचित और भावविभोर हुए एकनाथ जी को गुरु ने अपने हाथों से प्रसाद खिलाया और दोनों वापस मंदिर में आए। एकनाथी जी के गुरु जनार्दन स्वामी ने सोचा अब इससे सेवा लेना उचित नहीं है। उन्होंने एकनाथजी को गृहस्थाश्रम स्वीकार कर हरीभक्ति करने की आज्ञा दी।

एकनाथ जी घर जाकर गृहस्थ आश्रम में रहकर भगवान की पूजा तथा भजन नियमित रूप से करते थे। एकनाथ जी ने समाज की अज्ञानता, अंधविश्वास तथा जातिगत भेदभाव को मिटाने का प्रयास किया। एकनाथ जी ने लोगों को उपदेश दिया कि ईश्वर की शरण में जाने वालों को मृत्यु का भय नहीं रहता हैं। हरि नाम सबको लेना चाहिए। कोई भी जाति बड़ी या छोटी नहीं होती। सभी लोग समान है। ईश्वर ने सभी को एक जैसा बनाया है। सभी के साथ समानता का व्यवहार होना चाहिए। जैसे उनके उपदेश होते थे वैसे ही कृति भी होती थी। एक बार एक हरिजन महिला का बच्चा चिलचिलाती धूप में परेशान हो रहा था। एकनाथ जी ने बिना यह सोचे कि यह किसका बच्चा है उसे गोद में उठाकर सुरक्षित घर पहुंचाया। भगवान के लिए लाए गंगा जल का उपयोग प्यास से व्याकुल गधे को पिलाने के लिए किया। सभी के प्रति उनके मन में प्रेम भाव था। एक बार एकनाथ जी के पूर्वजों का श्राध्द था। उनकी पत्नी ने भोजन बनाया। उसकी सुगंध पाकर कुछ अछूतों ने भोजन की इच्छा प्रकट की। एकनाथ जी ने उन्हें घर पर बिठाकर भोजन कराया। ब्राह्मणों ने इसकी निंदा की। एकनाथ जी ने फिर से भोजन बनवाया। पर ब्राह्मणों ने आने से मना कर दिया। एकनाथ जी ने पितरों को आवाहन किया। पितृगण सशरीर उपस्थित हुए।

जैसे एकनाथ जी के विचार थे, वैसा ही व्यवहार भी था। एकनाथ जी के अनन्य भक्ति से प्रसन्न होकर भगवान राम उन्हें दर्शन देकर कहते हैं कि वाल्मीकि रामायण संस्कृत भाषा में है, लोगों को समझ में नहीं आ रही हैं। उसका मराठी अनुवाद कर लोगों को समझाओ। एकनाथ जी ने रामायण को मराठी भाषा में लिखा और उसे भावार्थ रामायण नाम दिया। लोग कहने लगे एकनाथजी तो निमित्त मात्र है, उनके मुख से स्वयं भगवान श्रीराम ग्रंथ रचना कर रहे हैं। एकनाथ जी द्वारा रचित प्रमुख ग्रंथ हैं। एकनाथी भागवत, रुक्मिणी स्वयंवर, चतुश्लोकी भागवत तथा पौराणिक आख्यान और संत चरित्र। इसके अलावा बहुत सारे अभंग तथा आरतियाँ लिखी। वे आरती के अंत में 'एका जनार्दनी' लिखते थे। जिसका अर्थ था अपने साथ गुरु का नाम जोड़ना। भारूड तथा गवलनी गौलणी विधा में सरल भाषा में साहित्य रचा। वर्तमान काल में सारा संत साहित्य नई प्रेरणा देने की क्षमता रखता है। क्योंकि यह बहुजन सुखाय तथा प्रेरक है। यह सामाजिक एकता बनाये रखने में सहायक होता है।

प्रथम स्वतंत्रता संग्राम के सेनानी

अमर वीर योद्धा मंगल पांडेय

भारत भूमि के कण कण में एक अलग ही विशेषता है, यहां की पतित पावन भूमि विश्व की सर्वश्रेष्ठ भूमि रही है और आज भी है। जो कि विश्व का सिरमौर, विश्वबंधुतत्व, वसुन्धरा का गौरव, देवभूमि, भारत माता की यह गोद जहां देवता भी जन्म लेने के लिये तरसते हैं। ऐसी पावन भूमि में जन्म लेनेवाले प्रत्येक प्राणी की यही पुनीत अभिलाषा होती है कि मेरे देश की यह पावन भूमि स्वर्ग से भी सुन्दर बनकर विश्व मे सर्वश्रेष्ठ हो। विश्वबन्धुत्व की हमारी संस्कृति भौतिकवादी दृष्टिकोण से परे हटकर आत्मज्ञान से ओत-प्रोत विश्वमानव के विकास का मार्ग युगों-युगों से प्रशस्त करने में सदैव अग्रणि रहा है। यही यहां के ऋषि मुनियो की सार्थक मीमांसा थी जो आर्यावृत कहलाता है।

डॉ. दिग्विजयकुमार शर्मा
शिक्षाविद, साहित्यकार पत्रकार,
स्तम्भ लेखक, समाजसेवी,
मोटिवेशनल स्पीकर
आगरा, उत्तर प्रदेश

एक समय था जब सत्य, अहिंसा, करूणा, क्षमा, दया, परोपकार एवं विश्वबन्धुत्व की भावना के अलोक से जगमगाता भारत देश पश्चात प्रहार से आहत होकर करूणा की उक्षिप्त हिलोरे ले रहा था अपनी स्वतंत्रता के लिये चिन्तन नव योजना व उर्जा के संचार में प्रयुक्त हो रहा था। उस समय स्वतन्त्रता संग्राम 1857 का आयोजन प्रास्तवित किया जा रहा था। कमल एवं रोटी के माध्यम से अपदस्थ पेशवा नाना साहब के प्रतीकात्मक नेतृत्व में आन्दोलन भूमिका बनाई जा रही थी क्रान्तकारी विभिन्न वेष धारणकर सैनिक छावनी में भारतीय सिपाहियों को गुप्त संदेशों के द्वारा आन्दोलन की सूचना प्रेषित कर रहे थे ।

बाटालियन एन्फ्रेन्टी रेजीमेन्ट 34वीं प्लाटून के सिपाही मंगलपाण्डे जिनका सिपाही न. 1446 था स्वधर्म एवं स्वराज्य की स्थापना हेतु क्रान्ति कि मशाल उनके मजबूत हाथों में पकडा दी गयी। प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम के इतिहास पृष्ठ बनकर चिरस्मरणीय अपूर्व नायक हुतात्म वीर योद्धा मंगल पाण्डे का जन्म अवध क्षेत्र के पुण्य पावन सुरसरि क्षेत्र में इस पुन्यात्मा का अवतरण 19 जुलाई 1827 को अषाढ शुक्ल पक्ष द्वितीय शुक्रवार विक्रम संवत 1884 मे हुआ था। इनकी माता श्री मती अभयरानी देवी ने अभयप्रवृति के पुत्र का नामकरण सम्बोधन देवसेना नायक मंगल के नाम पर मंगल दिया। इनके पिता का नाम दिवाकर पाण्डे था इनके पिता पैतृक निवास अयोध्या के समीप दुगुवा गांव मे था। मंगल पाण्डेय के उपरान्त इनके पिता अपने ननिहाल में प्राप्त सम्पत्ति की देख रेख करने हेतु फैजाबाद के ग्राम सुरहुरपुर में रहने लगे। जहां उपरोक्त दिनांक को भारत के इस प्रथम स्वतंत्रता युद्ध के प्रथम बलिदानी का जन्म हुआ।

पेशवा के नाना साहब प्रधानमंत्री अजीमुल्ला के आवाहन पर सैनिक छावनियों में स्वतंत्र चेतना जागृत हो रही थी किन्तु इसके पूर्व ही मंगल पाण्डे के मनोमस्तिक में विद्रोही भावनाएं पनप चुकी थी। क्योंकि बाल काल में ही मंगल पाण्डेय ने अंग्रेजी सेनाओँ के द्वारा अपने गांव में आग लगाने की घटना को अपनी आखो से देखा था तब से सदैव यह प्रश्न अपनी मां से करता रहता था कि मां हमारे घर में आग किसने लगायी थी? हम आर्य है अर्थात श्रेष्ठ है। फिर पराधीन क्यो मै उन्हे मार डालूगा जिन्होने गांव मे आग लगाई व लूट–पाट की उन्ही से प्रतिशोध का भाव उस समय ज्वालामुखी की तरह फटकर बाहर आ गया। जब पेशवा

ने स्वतंत्रता युद्ध का आवाहन किया था। बाल्यकाल से ही मन मे ज्वालाएं प्रज्वलित किये हुए वही बालक 22 वर्ष का तरूण हो चुका था। इनकी लम्बाई अब 8 फुट ढाई इंच थी। इनकी शरीर की बनावट व लम्बाई ताकत वा शक्ति के बारे में साहित्यकार अमृतलाल नागर की 'गदर के फूल' नामक किताब मे वर्णित है। घुटनों के नीचे तक लटकती हुई बाहुओं दीदीप्त शौर्य का प्रतीक उन्नतभाल उभार लिये हुये चौड़ा सीना वीरों की समस्त उपमाओं से सुशोभायमान यह बालक वीर तरूण बनकर बचपन की उस कल्पना की चित्कार को नही भूल पाया था।

एक समय मंगल पाण्डेय अपने ग्राम सुरहुरपुर से सहयोगीलाल सिंह जिन्हे वो प्यार से दादूका सम्बोधन करते थे उनके साथ अकबरपुर आये थे। इनके स्वास्थ को देखकर जी.टी. रोड से मार्च पास्ट करती हुई सेना जा रही थी उस सेना के एक अफसर की नजर इस 22 वर्षीय तरूण पर पडी जो उसके देह दृष्टि से प्रभावित होकर सेना मे भर्ती हो जाने का अनुरोध किया परन्तु आत्म अभिमानी मंगल पाण्डे ने उस अस्विकार कर दिया परन्तु दादू के समझाने के बाद 10 मई 1849 को कम्पनी सेना मे भर्ती हो गये जिनका यही से सौनिक जीवन प्रारम्भ हुआ।

इस क्रांतिदूत ने 1857 की क्रान्ति हेतु हाथों में शस्त्र धारण कर लिये। स्वधर्म की स्थापना हेतु समग्र क्रान्ति हिन्दुस्तान में प्रभावी होने लगी इसकी गोपनीयता का पूर्ण रूपेण निर्वहन किया जा रहा था ऐसे में इस क्रान्ति के महीनायक क्रान्ति का अग्रणी क्रान्ति के समारंगण में हिन्दू और मुसलमानो का पुनीत प्रणेता बन कर कूद पडा। कारतूसों में चर्बी केवल क्रान्ति का कारण बनी थी। क्रान्ति की अवधारणा जिस गोपनीयता के साथ फैजाबाद में बनायी गई बिठूर में योजनाबद्ध किया गया जिसकी गूँज समग्र हिन्दूस्तान में आग की तरह फैल गई। बैरकपुर की 34 वीं बटालियन के स्वाभिमानी सिपाही मंगल पाण्डे अपने देशबन्धुओ का अपमान न सहन कर किमकर्तव्यविमूढ़ बने रहना नही स्वीकारा वीरवर सैनिक मंगल पाण्डे अंग्रेजों द्वारा बलात् थोपी जाने वाली आज्ञा का उल्लंघन कर म्यांन में बंद अपनी तलवार को बाहर निकाल लेना चाहते थे। जमादार ईश्वरीप्रसाद एवं अन्य राजनितिक साथियों की सुलह पर इस बगावत को 31 मई 1857 तक टाल देना चाहते थे परन्तु मंगल पाण्डेय द्वारा 34 वीं रेजीमेन्ट के सैनिकों को भडकाने की सूचना एक गददार भारतीय सिपाही द्वारा सार्जेन्ट हूसन को दे दी गई सार्जेन्ट हूसन एवं लेफिटनेंट बागओनो मौके पर पहुच गये एवं मंगल पाण्डेय को खबरदार कर मृत्यु की चेतावनी दे डाली। परन्तु बेखौफ मंगल पाण्डे ने अपने सैनिक साथियो से दहाड कर कहा तुम सभी मेरा साथ दो मै इन गोरे अफसरो को धराशायी कर दूगा। सैनिको में उत्तेजना का समुद्र तो था परन्तु अंग्रजो के कोप का भाजन नही बनना चाहते थे। मि0 बाग ने पहला वार किया जिसे बचाते हुये मंगल पाण्डे ने एक वार में धराशयी कर दिया। सार्जेन्ट हूसन के पहुचने पर मंगल पाण्डे की बन्दूक की पहली गोली चली। बन्दूके में एक गोली बचने पर तथा साथियो के द्वारा साथ ना दिये जाने पर वह गोली मंगल पाण्डे ने स्वयं अपने सीने मे दाग दी परंतु दुर्भाग्यवश गोली सीने में लगकर कंधे को चीरते हुये निकल गयी थोडे उपरांत के बाद वह ठीक हो गये उन पर विद्रोहात्मक कार्यवाही का मुकदमा सैनिक न्यायालय पर चलाया गया तथा मृत्युदंड निर्धरित किया गया। 8 अप्रैल 1857 को फांसी की तारीख निर्धारित कि गयी अभियोग के निस्तारण के साथ इस वीर अग्रणी पुरूष से पूछा गया था कि इस विद्रोह में और कौन–कौन व्यक्ति शामिल थे भांति –भांति के भय का प्रलोभन दिये गये परन्तु इस धैर्यवान पुरूष मुख से किसी का भी नाम नही निकला उसने स्पष्ट शब्दो में घोषणा की जिन अधिकारियो की मेरी गोली लगने से मृत्यु हुई हैं उनसे मेरी कोई व्यक्तिगत दुश्मनी नही थी यदि मैने किसी की हत्या व्यक्तिगत दुश्मनी के कारण की होती तो क्रूर हत्यारो की श्रेणी में होता। किन्तु मंगल पाण्डेय ने यह कृत्व–तत्व निष्ठा व देश प्रेम, व स्व के रक्षार्थ किया है।

जिसके लिये श्री कृष्ण ने गीता उपदेश में कहा – हे–सुखो दुखो समे कृत्वा का अनुशरण करते हुये किया हैं अस्तु स्वदेश व स्वधर्म का अपमान होते हुये देखने के बजाय मृत्यु का वरण कर अपना नाम हुतात्माओ की पावन श्रेणी मे लिखना श्रेय्ष्कर है।

स्वदेश व स्वधर्म की रक्षा हेतु प्राणों की आहुति देना मै अपना नैतिक कर्तव्य मानता हूं। क्योंकि जियो भी शान से मरो भी शान से तुम्हे शर्म आनी चाहिये मुठ्ठी भर गोरे तुम पर हुकुमत कर रहे है। मेरा साथ दो बन्दूक उठा लो इन्हे मार दो कोई भी जिन्दा बच कर भागने ना पाये मूर्खो हम पर औरतें, बच्चे सभी हसेंगे गुलामी में जिनकी अपेक्षा हसते–हसते देश के लिये बलिदान होना श्रेष्यकर है। तुम अपना खून दो खून की होली खेलो राष्ट्रहित सर्वोपरि है। ये गोरे फिरंगी जायेगे देश आजाद होगा हमें अजादी मिलेगी मुझे यह

पूरा विश्वास है। मै बड़ा भाग्यशाली हूं कि भारत माता की सेवा में मुझे अपने प्राणो की आहुति देने का अवसर सर्व प्रथम कुछ ही समय पश्चात प्राप्त होने जा रहा है। मै भारत माता से प्रार्थना करता हूँ कि मेरा जन्म भारत में ही हो मै सौ जन्मो तक राष्ट्र के लिये हसते हसते फांसी के फन्दे पर बालिदान होउ यही मेरी अन्तिम इच्छा व ईश्वर से प्रार्थना है। ये मक्कार फिरगींओ झूठे दगाबाज एक मंगल पाण्डे को फांसी पर चढाकर भारत का स्वतंत्रता संग्राम अब नही रोक सकते। भारत माता के पास आज के बाद स्वतंत्रता संग्राम के लिये लाखो मंगल पाण्डे शहीद होने को तैयार हो जायेगे।

'द टू स्टोरी आफ एन इंण्डियन रिवोल्यूशनरी' 5 अप्रैल 1857 को कोर्ट मार्शल मे चल रही बहस के दौरान तत्कालीन अंग्रेज न्यायधीश के समाने के विचार 8 अप्रैल 1857 को प्राची में सूर्य की आभा को आलोकित होने से पूर्व ही मंगल पाण्डे को वध स्थल पर ले जाकर कलकत्ता से बुलाये गये जल्लादो द्वारा फांसी दे दी गई। इस बलिदानी की दिव्यआत्मा अपने नश्वर कलेवर को त्यागकर 1857 के स्वतंत्रता संग्राम के बीज रोपित कर उसके अंकुरण को सिंचित करने हेतु अपनी पावन रक्तांजलि हमेशा के लिए प्राणों की आहुति देकर कर दी।

चार्ल्सवल के अनुसार–''पाण्डेय, यह नाम स्वतंत्रता आन्दोलन के सक्रिय भगीदारत् सभी विद्रोही सिपाहियो का उपनाम बना कर प्रतिष्ठित हुआ।'' सिपाहियो को पाण्डे कह कर सम्बोधित किये जाने का उद्गम स्थल यह नाम है।'' स्वधर्म स्वराज्य एवं स्वाभिमानी के आत्मोत्सर्ग करने वाले मंगल पाण्डे 1857 समरागंण में अपनी अंजली देकर जिस स्वतंत्रता के बीज का रोपण किया था आज वह बीज सशक्त वृक्ष बनकर कपोल युक्त शाखाओ से सुदृढ पुष्पित पल्लवित वृक्ष बन गया है। इस सघन वृक्ष की छाया में हम स्वतंत्रता का प्राशय प्राप्त कर रहे है। आज भी इस वीर की हुतात्मा का साक्षात्कार करते हुये श्रद्धा की पुनीत मंदाकिनी के प्रवाह मे स्नान कर पवित्र हो जाती है।

बॉलीवुड स्टार आमिर खान ने मंगल पाण्डेय 'दी रायसिंग स्टार' नाम से मंगल पाण्डेय के जीवन पर फिल्म बनाई थी। फिल्म को केतन मेहता ने डायरेक्ट किया था, जिन्होंने कुछ समय पहले आई फिल्म 'मांझी द माउंटेन मैन' भी बनाई है। इसके अलावा 2005 में ही हैदराबाद के एक थिएटर में 'दी रोटी रेबेलियन' के नाम से मंगल पाण्डेय के जीवन की कहानी लोगों को दिखाई गई। अंग्रेज सरकार ने उनकी छवि को खराब करने की बहुत कोशिश की। 1857 में मंगल पाण्डेय को विद्रोही के रूप में सबके सामने लाया गया। लेकिन भारत की जनता अपने शहीद भाई की कुरबानी को बखूबी समझती थी, वो उनकी झूटी बातों में नहीं आए मंगल पाण्डेय ने जिस बात की शुरुवात की थी, उसे अपनी मंजिल में पहुँचने में 90 साल का लम्बा सफर तय करना पड़ा। शुरुवात उनकी थी, जिनसे प्रेरणा लेकर लाखों लोग स्वतंत्रता की लड़ाई में कूद पड़े और इसी सबके चलते 1947 को हमें पूर्ण रूप से आजादी का स्वाद चखने को मिला। ऐसे महान वीर योद्धा देश पर न्योच्छावर महापुरुष को आज भी पूरा देश बड़े ही गर्व से, शिद्दत से सलाम करता है।

जय हिंद।

प्रकृति प्रेम दर्शन

मेघा बरसो (गीत)

व्यग्र पाण्डे
गंगापुर सिटी
(राजस्थान)

बरसो–बरसो मेघा बरसो,
हो गये वर्षों बिन बरसे
तपती धरती आहें भरती, हर पल बूँदों को तरसे ।

नग्न गिरि, बीमार हैं नदियां
कूप पियासे आजा छलिया
झरने मूक सिसकियाँ भरते
भर दे अब प्रकृति की डलिया
कर ले नेक काम निज कर से
बरसो–बरसो मेघा बरसो, हो गये वर्षों बिन बरसे ।

मेघ घटाओं के संग आना
और चपल बिजली चमकाना
करना तरबतर सृष्टि को
वृष्टि तू ऐसी बरसाना
जिससे जन–जन का मन हरषे
बरसो–बरसो, मेघा बरसो, हो गये वर्षों बिन बरसे ।

रीत चला सावन मनभावन
तुम ना बरसे मेरे आंगन
मैं विरहन वाट जोहती
संगत तोहरी बिगड़े साजन
मनवा कब से मोरा तरसे
बरसो–बरसो मेघा बरसो, हो गये वर्षों बिन बरसे ।

श्रीरामकथा के अल्पज्ञात दुर्लभ प्रसंग

श्री राम दक्षिण में दण्डकारण्य के वन में चौदह वर्ष हेतु क्यों गए ?

डॉ. नरेन्द्रमेहता
स्वतंत्र लेखन
उज्जैन (मध्य प्रदेश)

श्रीरामचरितमानस के अनुसार कैकेयी ने महाराज दशरथजी से श्रीराम को चौदह वर्ष के लिए वनवास माँगा था। इस वनवास में श्रीराम के लिए कोई विशेष दिशा या विशेष वन क्षेत्र में जाने का वरदान नहीं माँगा गया था। यथा–

सुनहु प्रानप्रिय भावत जी का। देहु एक बर भरतहि टीका।।
मागउँ दूसर बर कर जोरी। पुरवहु नाथ मनोरथ मोरी।
तापस बेष बिसेषि उदासी। चौदह बरिस रामु बनबासी।
सुनि मृदु बचन भूप हियँ सोकू। ससि कर छुअत बिकल जिमि कोकू।।

श्रीरामचरितमानस अयोध्याकाण्ड २९–१–२

कैकेयी ने महाराज दशरथजी से कहा– हे प्राण प्यारे! सुनिये मेरे मन को भाने वाला (अच्छा लगने वाला) पहला वर (एक वर) तो दीजिए भरत को राजतिलक और हे नाथ! दूसरा वर भी मैं हाथ जोड़कर माँगती हूँ मेरा मनोरथ पूरा कीजिए। तपस्वियों के वेष में विशेष उदासीन भाव से (राज्य और कुटुम्ब परिवार आदि की ओर से) भलीभाँति उदासीन होकर विरक्त मुनियों की तरह राम चौदह वर्ष तक वन में निवास करे। कैकेयी के कोमल (विनम्र) वचन सुनकर राजा के हृदय में ऐसा दु:ख हुआ, जिस प्रकार से चन्द्रमा की किरणों के स्पर्श से चकवा विकल हो जाता है। यहाँ कैकेयी के इस वरदान में श्रीराम को विशेष वन या विशेष दिशा में जाने का कोई संकेत नहीं है।

मानस में पुन: श्रीराम माता कौसल्या से वन में जाने के पूर्व उनसे आशीर्वाद लेने जाते हैं तब श्रीराम ने वन के राज्य प्राप्त होने का कहा है किन्तु किसी विशेष दिशा में जाने के बारे में कुछ भी नहीं कहा। यथा–

धरम धुरीन धरम गति जानी। कहेउ मातु सन अति मृदुबानी।।
पिताँ दीन्ह मोहि कानन राजु। जहँ तहँ सब भाँति मोर बड़ काजू।।

श्रीरामचरितमानस अयोध्याकाण्ड ५३–३

धर्म की धुरी श्रीरामचन्द्रजी ने धर्म की गति को समझकर माता कौसल्या से अत्यन्त मृदुवाणी से कहा– हे माता! पिताजी महाराज (दशरथजी) ने मुझको वन का राज्य दिया है, जहाँ सब प्रकार से मेरा बड़ा काम बनने वाला है। यहाँ श्रीराम संकेत रूप में वन में ऋषियों–मुनियों के कल्याण करने तथा राक्षसों से वनों को मुक्त करने का संकेत दे रहे हैं जहाँ उनकी अत्यन्त आवश्यकता है।

वाल्मीकि रामायण में कैकेयी ने महाराजा दशरथजी से पहला वरदान यह माँगा तथा कहा–

अभिषेकसमारभ्यो राघवस्योपकल्पित:।।

अनेनैवाभिषेकेण भरतो मेऽ भिषिच्यताम्।।

वाल्मीकिरामायण अयोध्याकाण्ड सर्ग ११–२४–२५

मेरी बात सुनिये श्रीराम के राज्याभिषेक की तैयारी की गई है। इसी अभिषेक सामग्री द्वारा मेरे पुत्र भरत का अभिषेक किया जाए।

वाल्मीकि रामायण में कैकेयी ने महाराजा दशरथजी से अत्यन्त ही स्पष्ट शब्दों में राम के लिए विशेष रूप से दण्डकारण्य ही वर माँगा था तथा उसमें चौदह वर्ष तपस्वी वेष में वल्कल तथा मृग चर्म धारण करने का वर माँगा था। यथा–

नव पचिं च वर्षाणि दण्डकारण्यमाश्रित:।

चीराजिनधरो धीरो रामो भवतु तापस:।

भरतो भजतामद्य यौवराज्ययकष्टकम्।।

एष में परम: कामो दत्तमेव वरं वृणे।

अद्य चौव हि पश्येयं प्रयान्तं राधवं वने।।

वाल्मीकि रामायण अयोध्याकाण्ड सर्ग ११–२६–२७–२८

धीर स्वभाव वाले श्रीराम तपस्वी वेश में वल्कल तथा मृगचर्म धारण करके चौदह वर्षो तक दण्डकारण्य में जाकर रहें। भरत को आज निष्कण्टक युवराज पद प्राप्त हो जाए। यह मेरी सर्वश्रेष्ठ कामना है। मैं आपसे पहले का दिया हुआ वर ही माँगती हूँ। आप ऐसी व्यवस्था करें जिससे मैं आज ही राम को वन की ओर जाते देखूँ।

कैकेयी ने श्रीराम को वरदान प्राप्त करने के बाद अयोध्या में प्रात:काल में ही वनगमन का वर माँगा। ऐसा लगता है कि सरस्वती उनकी जिह्वा पर आकर बैठ गई थी। वह यह भी अच्छी तरह जानती थी कि यदि राम वनगमन हेतु रूक गए तथा भरत अपने मामा के यहाँ से लौट आए तो भरत राम की परछाई है, उनमें आपस में बहुत प्रेम है वे उन्हें वनगमन से रोक लेते तथा भरत स्वयं वन चौदह वर्ष के लिए चले जाते। श्रीराम को अपनी लीला करनी थी तथा उनका अवतार ही जगत में पृथ्वी का भार कम करने के लिए हुआ था अत: उन्हें दण्डकारण्य जाना ही था। दण्डकारण्य (दण्डक वन) में राक्षसों का उपद्रव बहुत हो रहा था। दक्षिण में रावण भी बहुत अत्याचारी हो गया था अत: प्रभु की लीला से कैकेयी ने ऋषि–मुनियों की रक्षार्थ दण्डकारण्य जाने का कहलवा दिया। यह वन विन्ध्याचल पर्वत से गोदावरी तक फैला था। आज भी इस वन क्षेत्र में छत्तीसगढ़, ओडिशा एवं आंध्रप्रदेश के हिस्से शामिल हैं। लंका में रावण के अत्याचारों का समाप्त होना ही उस समय नितान्त आवश्यक था। दंडक राक्षस के नाम पर इसका नाम दण्डकवन पड़ा है।

कैकेयी ने श्रीराम को दण्डक वन भेजने हेतु महाराजा दशरथजी से विशेष रूप से वरदान माँगा इस बात की पुष्टि अध्यात्मरामायण में स्पष्ट है यथा–

तद्वयं न्यासभूतं मे स्थापितं त्वयि सुव्रत।
तत्रैकेन वरेणाशुभरतं मे प्रियं सुतम्।।

एभि: संभृतसंभारैर्यौवराज्येऽभिषेचय।
अपरेण वरेणाशु रामोगच्छतु दण्डकान्।।
मुनिवेषधर: श्रीमान् जटावल्कलभूषण:।
चतुर्दश समास्तत्र कन्दमूल फलाशन:।।
पुनरायातु तस्यान्ते वने वा तिष्ठतु स्वयम्।
प्रभाते गच्छ तु वनं रामोराजीवलोचन:।।
यदि किञ्चिद्विलम्बेत प्राणास्त्यक्ष्येतवाग्रत:।
भव सत्यप्रतिज्ञस्त्वमेतदेवमम प्रियम्।।

अध्यात्मरामायण अयोध्याकाण्ड सर्ग ३–१७ से २१

कैकेयी ने महाराज दशरथजी से कहा– हे सुव्रत। मैंने वे दोनों वर आपके पास धरोहर के रूप में रख दिए थे। अब इनमें से एक वर यह है कि आप तुरन्त ही मेरे प्रिय पुत्र भरत को इस एकत्रित की हुई सामग्री से युवराज पद पर अभिषिक्त कीजिए और दूसरे वरदान के अनुसार तुरन्त ही राम दण्डकवन को चले जाएं। वहाँ श्रीमान् रामको जटावल्कलादि धारण कर कंद–मूल–फल खाते हुए मुनिवेष से चौदह वर्ष तक रहना चाहिए। उसके पश्चात् यदि उनकी इच्छा हो तो वे अयोध्या वापस लौट आए अथवा वन में ही रहें किन्तु कमलनयन राम कल सबेरे ही अवश्य वन को चले जाएं। यदि इसमें तनिक कुछ देरी होगी तो आपके सामने ही मैं अपने प्राण छोड़ दूँगी। आप अपनी प्रतिज्ञा सत्य कीजिए, मेरा प्रिय कार्य बस यही है।

इस रामायण में भी श्रीराम को प्रात:काल ही दण्डकारण्य वन जाना पड़ा जो कि दक्षिण में था। श्रीराम को भरत से मिलने का अवसर भी नहीं दिया गया। कैकेयी ने दोनों रामायणों में पहला वर भरत को राज्याभिषेक कर युवराज पद पर अभिषिक्त करने का माँगा है।

इस तरह कैकेयी ने श्रीराम को विशेष रूप से दण्डकवन भेजने का वर माँगा। यह सब प्रभु श्रीराम की अनेक लीलाओं में से एक मानना चाहिए।

शिमला यात्रा - एक संस्मरण

मनमोहन कालरा

निदेशक
विज्ञान और प्रौद्योगिकी विभाग
नई दिल्ली, भारत सरकार

यात्रा करना जीवन का एक महत्त्वपूर्ण और अनिवार्य हिस्सा है। इससे जीवन में नई ऊर्जा भर जाती है। हमने जून 1989 में शिमला जाने का कार्यक्रम बनाया। इसके लिए Grand Hotel, Shimla जो कि सरकारी कर्मचारियों का यात्रीनिवास था, में एक कमरा सुरक्षित करा लिया था। नई दिल्ली स्टेशन जाने के लिए हम टैक्सी से निकले। घर से अभी थोड़ी दूर दो किलोमीटर ही बढ़े थे कि टिकट याद आए। रास्ते में टिकट निकालने के लिए बटुआ खोला तो टिकट नहीं थे। वापिस घर लौटे और टिकट उठाये। असल में हुआ क्या था कि हम यात्रा में खाने के लिए पकौड़े बनाने में मसरूफ थे।गाड़ी में कोई काम करने के लिए नहीं होता, इसलिए आदमी को भूख ही लगती रहती है। घर का बना खाने को सामान पास होना चाहिए।इस चक्कर में कुछ देर हो गई। हमें पता ही नहीं चला, अफरा–तफरी में टिकट उठाना भूल गए थे।

हम स्टेशन की ओर बढ़े। दिल्ली स्टेशन से हम कालका मेल से कालका सुबह पहुँचे। फिर दोपहर को वहाँ से शिमला के लिए छोटी लाइन की गाड़ी पकड़ी। गाड़ी में बहुत भीड़ थी। यात्रियों ने अपना सामान प्रसाधन कक्ष में भी भर दिया था। इससे सब यात्रियों को भारी असुविधा हो रही थी। गाड़ी से बाहर नज़र डालने पर ऊँचे–ऊँचे हरे–भरे पेड़ नज़र आ रहे थे। जिनकी छटा देखते ही बनती थी। मन पुलकित हो उठता था। नीचे की ओर गहरी खाइयाँ दिखने पर बड़ा रोमांच होता था। गाड़ी की गति बहुत धीमी थी। यात्री उतरकर चलती गाड़ी में फिर से आराम से चढ़ सकते थे। गाड़ी को 120 मील की यात्रा पूरी करने में 5–6 घंटे का समय लग गया था। दोपहर 3 बजे के करीब हम शिमला पहुँचे। पर इस छोटी लाइन की हमारी यात्रा अविस्मरणीय है।

छोटी गाड़ी कालका से शिमला की गाड़ी थी। यह छोटी गाड़ी थी। इस रास्ते में सौ से अधिक सुरंगे थीं। इसमें हमारे सहयोगी एक पंजाब के दंपत्ति थे। बहुत ही मिलनसार। खशमिज़ाजी, मिलनसार स्वभाव, बाँटकर खाना यह हमारे पंजाब की संस्कृति की मुख्य विशेषताएँ हैं। नानकदेव ने इसी पर बल दिया है। वे कहते हैं – **'वंड के छकना'** अर्थात् बाँटकर खाना। वह कहते थे – **'खा वंड ते खा खंड'** यानी बाँटकर खाने से भोजन चीनी जैसा मीठा होता है। इसी से गुरुद्वारों में लंगर प्रथा का प्रचलन शुरु हुआ जो आज भी निर्बाध रूप से चल रहा है। आने सुना होगा व्यवसाय में जब किसी को कोई मुनाफा होने की जगह घाटा होने की संभावना लगती है तो वह यही कहता है – 'मैं क्या रोटी गुरुद्वारे में खाऊँगा' यानी गुरुद्वारे में सबको मुफ्त खाना मिलता है। कोई भी गुरुद्वारा हो वहाँ दर्शनार्थी 'प्रसाद' ग्रहण करके ही जाते हैं। लंगर के लिए प्रसाद शब्द का प्रयोग होता है। कुछ–कुछ गुरुद्वारों में तो सारा दिन लंगर चलता है। सुबह चाय से शुरु होकर रात्रिभोज तक। पंजाबी दंपत्ति युवा थे। मेरी पत्नी से तो उनकी पत्नी की पूरे रास्ते दो सहेलियों की तरह बातें होती रहीं। जब दोपहर के भोजन का समय हुआ तो दोनों ने अपना–अपना खाना निकाला। उनके साथ भी दो बच्चे थे और हमारे साथ भी हमारे दो बेटे थे। उनका खाना देखकर हम दोनों हैरान हो गए। वह तो पूरे आठ लोगों का खाना था। उन्होंने हमें अपना ढेर सा खाना दिया। उनका कहना था कि हम हमेशा ऐसे ही ढेर सा खाना बनाकर ले जाते हैं। कभी–कभी कोई यात्री किसी कारणवश खाना नहीं ला पाता तो वह हमारे साथ ही खाता है। खाना अकेले थोड़े ही खाया जाता है। बाँटकर खाया जाता है। सबसे बड़ी बात यह थी कि खाना बड़ा स्वादिष्ट था। उसे देखकर आँखों को भी तृप्ति मिल रही थी और खाकर आत्मा को भी। बड़े–बड़े भरवाँ पराठे थे। पनीर और

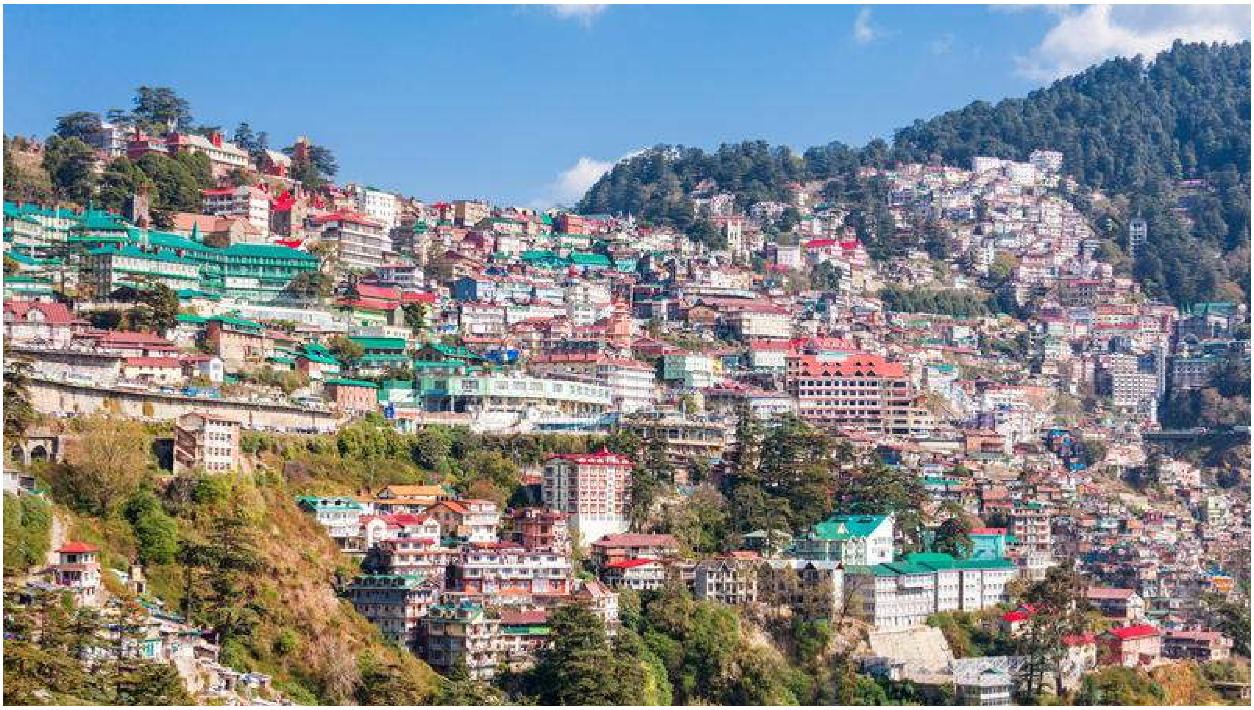

गोभी के पराँठे। जिनका स्वाद हम आज भी नहीं भूले। ऐसा लगता था स्वयं अन्नपूर्णा देवी ने वह खाना बनाया हो। पूछने पर उन्होंने बताया कि मम्मी जी ने यानी यह पूरा खाना मेरी सास ने बनाया है। उन्होंने बताया कि उनके घर में ही एक बड़े कमरे में गुरुग्रंथ साहब है। हमारा वही गुरुद्वारा है। मम्मी जी रोज़ सुबह पांच बजे उठ जाती हैं। नहा–धोकर गुरुद्वारे की सफाई करती हैं। फिर गुरुग्रंथ साहिब का पाठ करती हैं। 'वाक्' निकालती है। उसी वाक् के अनुसार उनके पूरे दिन की गतिविधि होती है। उस वाक् को वह बाबा जी का संदेश समझती हैं। फिर अरदास करके ही वह कुछ ग्रहण करती हैं। हमारे यहाँ जब खाना बनता है तो किसी को जरूर बाँटकर खाया जाता है। ऐसे संस्कार जब बड़ों से आने वाली पीढ़ी को मिलते हैं तो वह भी स्वतः संस्कारित हो जाती है। युवा दंपत्ति लुधियाना से थे। उनके मकान का नंबर भी एन.डी.–57 था और हमारे घर का नंबर दिल्ली के पीतमपुरा कालोगी में एन.डी–57 है। मेरी पत्नी ने नाम पूछा तो उन्होंने बताया कि वह सेठी हैं। उनका नाम गुरप्रीत है और उनके पति का नाम गुरुशरण सिंह है। मेरी पत्नी का ध्यान गुरुप्रीत के पैरों में डली सोने की पाजेब पर गया। तो वह देखते ही रह गई। लगता था यह दंपत्ति पर्याप्त आर्थिक रूप से समृद्ध परिवार था। ईश्वर कभी–कभी किसी को सूरत, सीरत, संपन्नता सबकुछ एक साथ दे देता है और साथ में सबसे बड़ा आभूषण देता है उदारता और निर्भीकता। दोनों पति–पत्नी को ये गुण उन्हें पैतृक रूप से मिले थे। हमारी यात्रा की यह यादगार इतनी सुखद थी कि आज 23 साल बाद भी भूली नहीं है और न भूलेगी।

दोपहर गाड़ी में एक अप्रिय घटना हमारे साथ घटी। एक सफेदपोश और सज्जन दिखने वाले आदमी ने बैरोगस्टेशन पर उतरकर हमारी अटैची उठा ली और बड़ी शान से स्टेशन के बाहर जाने लगा। मैं उसके पीछे भागा और पूछा कि हमारी अटैची क्यों ले जा रहे हो। उसने खेद प्रकट किया और कहा कि गलती हो गई है। मैं अपनी अटैची वापिस ले आया और भगवान का शुक्र किया। परदेस में बगैर कपड़े, सामान और पैसे के हमारी क्या दुर्गति होती।क्या स्वतंत्र भारत में हर आदमी को पेट की ज्वाला शांत करने के लिए अपना कोई भी उचित–अनुचित व्यवसाय करने का अधिकार है? चाहे वह चोरी, छीनाझपटी और रिश्वतखोरी ही क्यों न हो? हमने सबक सीखा कि गाड़ियों में चोर–उच्चके भी सफर करते हैं और किसी अजनबी से वार्तालाप कर के जान–पहचान नहीं बनानी चाहिए। ना जाने कौन कैसा हो? किसी के मुँह पर कुछ नहीं लिखा होता।

दोपहर में हम ग्रैंड होटल पहुँचे। वहाँ की गंदगी और घोर दुर्व्यवस्था देखकर हमारा माथा ठनका। शौचालय और गुसलखाने के नलों में पानी नहीं आ रहा था। कहते हैं कि नाम बड़े और दर्शन छोटे। नाम ही केवल ग्रैंड था बाकी सब कुछ वर्स्ट था। वहाँ के लोगों ने हमें बताया कि यह सब निजी होटलों के मालिकों, जलसंस्थान और होटल कर्मचारियों की साँठ–गाँठ से होता है। जलसंस्थान के कर्मचारी पंप खराब होने की दुहाई देते हैं। इसका खामियाजा यात्रियों को भुगतना पड़ता था। कुछ यात्री परेशान होकर निजी होटलों में चले जाते थे। वहाँ उनसे मनमाना किराया वसूल किया जाता था। सुबह पानी की बाल्टियाँ 10रु. प्रति बाल्टी के हिसाब से खरीदनी पड़ती थी। कुछ लोग ऊपर का पैसा बनाने में जुगाडु होते हैं। इसमें उनका कोई सानी नहीं रखता। समाज में असली महिमा तो ऊपर के पैसे में ही समझी जाती है। अपनी–अपनी सोच है। हमारी मदद पर्यावरण मंत्रालय के शिमला स्थित कार्यालय के कर्मचारी दिवाकर शर्मा ने की। हम उसे भूल नहीं सकते।

उस यात्रीनिवास में हमारी पहली रात बहुत खराब बीती। हम ठीक से सो भी नहीं पाये, क्योंकि होटल की छत टीन की थी। उस पर मूसलाधार बारिश की आवाज़ और बंदरों की उछल–कूद। हमने किसी तरह उस होटल में दो दिन बिताये, क्योंकि शिमला के किसी और होटल में उन दिनों जगह आसानी से उपलब्ध नहीं थी। मरता क्या न करता। वहीं रहना पड़ा। हमारे छोटे बेटे वैभव को बहुत परेशानी हुई। उसने हमारी खातिर सब सहा। आज वह इस दुनिया में नहीं है। उसकी सहजता, सरलता,निश्छल मुस्कान और सहनशीलता को याद कर आँखें नम हो जाती हैं और मैं नत–मस्तक हो जाता हूँ। मन अपराध–बोध से भर जाता है कि हमने सरकारी यात्रीनिवास के बजाय किसी अच्छी निजी होटल में शुरु से ही आरक्षण किया होता। हमारे गलत निर्णय और ठीक तरह से प्लानिंग न करने से उसे जो परेशानी और असुविधा हुई, उसे याद करके बड़ा अपराध–बोध होता है। पर क्या करें? जाने वाले वापिस नहीं आते, पर उनकी याद आती है।

यात्रा के दौरान हम मशोवरा, नारकंडा, कुफरी और हिमाचल की हरी–भरी वादियों में खूब घूमे। बहुत आनंद आया। मशोवरा शिमला से कुछ मील दूर स्थित एक गाँव है जिसका प्राकृतिक सौंदर्य अवर्णनीय है। इसकी तुलना मालदीप द्वीप समूह से की जाती है। शिमला बहुत भीड़–भाड़ वाली जगह है और शहर कंक्रीट जंगल की तरह लगता है, इसलिए सैलानी अब मशोबरा जाना पसंद करते हैं। भ्रमण के दौरान हम मशोवरा स्थित अग्रेजों के समय में बने लकड़ी के होटल Wild Flower Hall गये थे। उस होटल में हमने वैभव के साथ बैठकर चाय और नाश्ता किया था। सब कुछ बहुत बढ़िया और स्वादिष्ट था। वैसा नाश्ता करने का मौका फिर हमें दुबारा कहीं नहीं मिला। 1990 में यह होटल जलकर राख हो गया था। उसकी जगह ओबराय ग्रुप ने उसी आकार का और उस जैसा पक्का होटल बना दिया था।

अपनी यात्रा के दौरान हम झाकू स्थित हनुमान मंदिर भी गये थे। कहते हैं कि हनुमान जी ने संजीवनी बूटी लेकर लौटते समय यहाँ विश्राम किया था। मंदिर एक ऊँची पहाड़ी पर स्थित है। लगभग 10 किलोमीटर की चढ़ाई चढ़नी पड़ती है। वैभव दौड़कर हमसे आगे निकल जाता था और हमको धीरे–धीरे ठुमक–ठुमक कर चलता देखकर हँसता था। चढ़ाई चढ़ना वृद्ध और रोगियों के लिए कठिन होती है, इसलिए उनकी सुविधा के लिए Winch होनी चाहिए। हम जब मंदिर में हनुमान जी के दर्शन करके लौट रहे थे तो मेरी पत्नी के हाथ में प्रसाद का लिफाफा और पर्स था। बंदर आया और दोनों लिफ़ाफे छीनकर भाग गया और पेड़ पर जा बैठा। हम बड़े परेशान हुए। वहीं–गुजरते हुए दूसरे अनुभवी यात्री ने हमारी मदद की। उसने दूर कुछ फल फेंक दिए जिसे लेने वह नीचे उतरा और पहले वाले लिफाफे फेंक दिए। हमने उनका धन्यवाद किया। यात्रा में हर प्रकृति के लोग मिले। कहते हैं कि यात्रा में ही व्यक्ति के वास्तविक स्वभाव का परचिय मिलता है। हम अपनी यात्रा समाप्त करके, खट्टे–मीठे अनुभव लिए घर लौटे। किसी ने ठीक ही कहा है कि पूर्व हो या पश्चिम, घर ही सर्वोत्तम जगह है। घर जैसा सुख आपको बाहर कहीं भी नहीं मिल सकता। ■

संयम के दोहे

प्रो. डॉ. शरद नारायण खरे
प्राचार्य
शासकीय जेएमसी महिला महाविद्यालय
मंडला (म.प्र.)

संयम का है ही नहीं, किंचित यहां विकल्प।
संयम को नित मानना, आगत का संकल्प।।

संयम को तो मानकर, मानव बने महान ।
संयम वह संकल्प है, जो लाता सम्मान।।

संयम तो है चेतना, संयम है उत्थान।
संयम को ही थामकर, जीना हो आसान।।

संयम तो संदेश है, संयम है शुभकर्म।
संयम तो है बंदगी, संयम है इक धर्म।।

संयम तो है प्रेरणा, संयम तो शुभगान।
संयम तो है सादगी, संयम नवल विहान।।

संयम तो है साधना, संयम तो है ध्यान।
संयम तो है जागरण, मानव पाये शान ।।

संयम तो है दिव्यता, अनुशासन आवेश ।
संयम है गंभीरता, बदले जग अरु देश।।

संयम तो नित धैर्य है, संयम तो है वेग।
संयम को तो मान लो, जो है सुख का नेग।।

संयम तो है सभ्यता, संस्कार का रूप।
संयम से ही नित खिले, उजली–पावन धूप ।।

संयम तो है नित विजय, संयम है उजियार ।
संयम से ही मिल सके, हमको जीवन–सार ।।

संयम तो जयघोष है, संयम है इक राह।
संयम को तो देखकर, सहज निकलती वाह।।

पूर्ण सद्‌गुरु बनाता है - धर्मक्षेत्री

डॉ. श्याम सुन्दर पाठक 'अनन्त'

लेखक, कवि, मोटीवेशनल स्पीकर,
असिस्टेट कमिश्नर (वस्तु एवं सेवा कर)
उत्तर प्रदेश

धृतराष्ट्र उवाच –

धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे समवेता युयुत्सवः । मामकाः पाण्वाश्चौव किमकुर्वत सञ्जिंय ।।

गतांक में इस श्लोक की व्याख्या से आगे......

ईश्वरखोजी के जीवन में जब सच्चा गुरु आ जाता है तो उस मार्ग पर चलने का मार्ग भी सुझाता है । और वह मार्ग है– साधना का मार्ग। एक ईश्वरखोजीके लिए कर्म का अर्थ होता है– साधना कर्म । गीता में जहाँ– जहाँ भी भगवान श्रीकृष्ण ने कर्म शब्द का प्रयोग किया है , उसे साधना कर्म ही समझना चाहिए । प्रायः अधिकांश लोग उसे सांसारिक कर्म समझ लेते हैं । आगे जब भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं कि यूँ तो मेरे लिए करने को कोई कर्म नहीं है, फिर भी मैं कर्म करता हूँ , क्योंकि यदि मैं ही कर्म नहीं करूँगा तो मुझे मानने वाले भी अकर्मण्य हो जायेंगे, तो यहाँ भगवान कृष्ण का कर्म का अर्थ साधना कर्म से है । आपने भगवान शिव को भी देखा होगा कि वे अनवरत साधना में रत रहते हैं । हाँलाकि वे किसकी साधना करते हैं, ये सवाल प्रायः कई बार मस्तिष्क में आता है , लेकिन कोई सटीक समाधान तब तक नहीं मिल सकता जब तक जीवन में पूर्ण गुरु का पदार्पण ना हो । भगवान श्रीकृष्ण स्वयं भी योगी हैं, योगयोगेश्वर हैं, इसलिए भगवान कृष्ण का कर्म का अर्थ साधना कर्म, योग साधना से है । जब वे अर्जुन से कहते हैं कि तू सिर्फ कर्म कर, फल की चिन्ता मत कर तो उनका सीधा संदेश है कि तू बस साधना– कर्म कर, ईश्वर तत्व की प्राप्ति कब और कैसे होगी, इसकी चिन्ता मत कर । जबकि एक संसारभोगी के लिए कर्म का अर्थ सांसारिक कर्म ही है और भौतिक वस्तुओं, पद, प्रतिष्ठा, धन आदि की प्राप्ति ही उसका लक्ष्य होता है, और उसकी प्राप्ति के लिए वह जो भी करता है, उसे ही वह अपना कर्म मानता है ।

एक ईश्वरखोजी के लिए युद्ध का अर्थ आन्तरिक युद्ध से है । क्योंकि किसी बाहरी या भौतिक वस्तु को पाना उसका लक्ष्य नहीं होता । इसलिए जो मिल जाए, उसी को प्रभु इच्छा मान कर प्रसन्न रहता है, उसकी असली लड़ाई तो मन के अन्दर चलती है, जहाँ वह अपने

विकारों से लड़ता है । गीता जी मन के अन्दर छिपे हुए उन समस्त शत्रुओं का, विकारों का, जो भगवत– प्राप्ति से रोकते हैं, का विषद वर्णन करती है । कौरव पक्ष के योद्धा कोई मानव मात्र नहीं, बल्कि मन के अन्दर गहरे से पैठे विकारों के नाम हैं, जिन्हें आप आगे के श्लोकों में गहराई से पढ़ेंगे और उनसे जीतने के सूत्र भी जानेंगे । एक ईश्वरखोजी का सारा ध्यान अपने अन्दर के विकारों को दूर करने पर रहता है। मन के अन्दर का युद्ध किसी बाहरी युद्ध से अधिक भयानक होता है, इसलिए तो साधना कर्म सुनने में जितना आसान लगता है, करने में उतना ही कठिन है । लेकिन इसलिए नहीं कि इसमें अधिक परिश्रम या कष्ट लगता है, बल्कि उसमें जो आनन्द मिलता है, उसी के लिए सूरदास जी कहते हैं कि– ज्यों गूंगे मीठे फल को मन अन्तर्गत ही भावे । अर्थात् उसके आनन्द को सिर्फ एक साधक ही समझ सकता है, लेकिन उसके मन के अन्दर के विचार साधना करने बैठते ही इतनी धमा–चौकड़ी मचाना शुरु कर देते हैं कि साधक के लिए दस मिनट साधना करना भी दस घंटे के बराबर लगने लगता है। दस मिनट में ही मन के विकार साधक के पाँव उखाड़ देते हैं । दुनिया का कोई भी कष्ट साधना कर्म से आसान लगने लगता है। इसलिए एक ईश्वरखोजी साध ाक प्रारम्भ में हताशा महसूस करने लगता है, क्योंकि उसे साधना कर्म अन्य सभी कार्यो से कठिन प्रतीत होता है। वह चारों तरफ से स्वयं को घोर विकारों से घिरा पाता है, और कभी कभी तो स्थिति इतनी विषम आ जाती है कि वह साधना कर्म से ही विरत हो जाता है, लेकिन उस समय भी कृष्ण– रूपी सद्गुरु उसका दामन थामे रहते हैं, और उसे बार– बार साधना कर्म पर अग्रसर होने को प्ररित करते रहते हैं । गीता वास्तव में इसी आन्तरिक युद्ध का अत्यन्त गूढ़ वर्णन करती है , जिसे इस टीका में आसान शब्दों में ईश–कृपा से समझाने का प्रयत्न है ।

एक संसार–भोगी के लिए चूँकि भौतिक वस्तुओं, पद, प्रतिष्ठा, शक्ति की प्राप्ति ही महत्वपूर्ण होती है, इसलिए वह सतत बाहरी संघर्षो, युद्धों में ही संलग्न रहता है। भौतिक वस्तुओं, पद, प्रतिष्ठा, शक्ति पाने को कभी– कभी वह इस कदर पागल रहता है कि किसी भी अनुचित साधन को अपनाने से भी वह नहीं चूकता। सिकन्दर को उस आन्तरिक आनन्द के साम्राज्य को जीतने का मौ. का भारतीय– मनीषी ने दिया था, लेकिन सारे संसार को जीतने की धुन में पागल, मदान्ध सिकन्दर हार कर खाली हाथ ही इस दुनिया से विदा हो गया। हर संसारभोगी को भी एक– ना– एक दिन खाली हाथ ही जाना पड़ता है। बस केवल एक साधक ही नाम रुपी धन से भरकर निज धाम को प्रस्थान करता है। इसलिए संसारभोगी प्रारम्भ में भले अपने को शक्तिशाली, विजेता, प्रसन्न या मालामाल महसूस करे, लेकिन अन्त में उसे पराजय का मुख देखना ही पड़ता है । गीता के समापन के समय भी संजय युद्ध का परिणाम पहले ही घोषित कर देता है कि जहाँ योगेश्वर भगवान श्रीकृष्ण हैं और जहाँ गाण्डीव–धनुषधारी अर्जुन है, वहाँ ही श्री, विजय, विभूति, और अचल नीति है । अब इस से साफ– साफ युद्ध के अन्त की घोषणा क्या हो सकती थी– लेकिन पुत्र मोह से अन्धे धृतराष्ट्र को ये घोषणा सुनाई ही नहीं दी। गीता एक सच्चे साधक की विजय की स्पष्ट घोषणा का ग्रन्थ है ।

लेकिन एक ईश्वरखोजी को, एक साधक को इस आन्तरिक युद्ध में तीन मित्रों का सहारा लेना पड़ता है। पहला श्रद्धा, दूसरा तत्परता और तीसरा इन्द्रिय संयम। बिना श्रद्धा के अध्यात्म के मार्ग पर कुछ हासिल नहीं होगा। भले ही एक ईश्वरखोजी को विवेकशील बुद्धि का सहारा लेना पड़ता हो, लेकिन श्रद्धा ही वह पहली शर्त है, जो साधक को इस मार्ग पर आगे बढ़ाती है। श्रद्धा के बिना साधक के इस मार्ग से भटक जाने या विचलित हो जाने का खतरा रहता है। श्रद्धा एक साधक को इस मार्ग पर टिकाए रखती है । इसलिए एक साधक के लिए उसका पहला मित्र श्रद्धा है, जिसका दामन उसे एक पल के लिए भी नहीं छोड़ना है।

एक ईश्वरखोजी या साधक को सदैव तत्पर रहने की आवश्यकता है। क्योंकि विकार रुपी शत्रु ताक लगाए रहते हैं कि कब साधक थोड़ा भी आलस्य या टालमटोल करे, और कब वे उसके मन को कमजोर करके उसे ईश्वरप्राप्ति का मार्ग से विचलित करें। इसलिए एक साधक को साधना कर्म में रत्ती भर भी आलस्य नहीं करना चाहिए, वरना सांसारिक विकार उसे घेरनें में एक मिनट का भी आलस्य नहीं करेंगे । इसलिए तत्परता को एक साधक का दूसरा मित्र बनाना चाहिए।

एक साधक का तीसरा मित्र है– इन्द्रिय संयम । इन्द्रियों पर संयम ना होने की परिस्थिति में विषय विकार उसे फिर से संसार कूप में धकेल देते हैं । बल्कि कई बार उसे मार्ग से पथभ्रष्ट कर देते हैं। इन्द्रिय– संयम के बिना साधक के लिए एक कदम भी आगे बढ़ाना बहुत मुश्किल होता है। इसलिए एक साधक को इन्द्रिय– संयम पर विशेष ध्यान देना चाहिए ।

एक साधक को तीन शत्रुओं से भी सदैव बेहद सतर्क रहना चाहिए , जो सांसारिक विषय वासनाओं के छिपे हुए सैनिक हैं– वे हैं अज्ञान, अश्रद्धा और तीसरा संशय। अज्ञान व्यक्ति को सत्य से परिचित ही नहीं होने देता, अश्रद्धा भक्ति को दृढ़ नहीं होने देती और संशय तो इस साधना मार्ग का सबसे बड़ा शत्रु है । भगवान श्रीकृष्ण तो यहाँ तक कहते हैं कि सो साधक मेरे ऊपर (अर्थात् अपने पूर्ण सद्गुरु पर) संशय करते हैं, उनको न इस लोक न परलोक में, कहीं भी सुख नहीं मिलता। यानि कि उसका पूर्ण पतन हो जाता है। कोई भी संसारिक विकार साधक को पथभ्रष्ट तो कर सकते हैं लेकिन पतन नहीं कर सकते, लेकिन संशय एक साधक या ईश्वरखोजी का पूरी तरह से पतन कर देता है। इसलिए एक साधक को भूलकर भी, स्वप्न में भी अपने पूर्ण सद्गुरु पर सन्देह नहीं करना चाहिए । आगे चतुर्थ अध्याय में इस पर विषद चर्चा करेंगे । यहाँ सिर्फ एक धर्मक्षेत्री (ईश्वरखोजी) और एक कुरुक्षेत्री (संसारभोगी) के मध्य अन्तर को संक्षेप में समझने का प्रयास है।

एक बात जो सबसे महत्वपूर्ण है कि एक ही व्यक्ति के अन्दर धर्मक्षेत्र और कुरुक्षेत्र दोनों विद्यमान हैं। एक साधक यदि साधना नहीं करता तो धीरे– धीरे संसार की ओर आकर्षित होने लगता है और धर्मक्षेत्री से कुरुक्षेत्री बन जाता है। एक ईश्वरखोजी या साधक बुरे संस्कारों या बुरी संगत के प्रभाव में आकर संसारभोगी बन जाता है और एक संसारभोगी भी कभी– कभी अच्छे संस्कारों व संतों के सान्निध्य में आकर ईश्वरखोजी बन जाता है और ज्ञान

पाकर साधक बन जाता है। अच्छे संस्कारों व गुरुकृपा से एक कुरुक्षेत्री धर्मक्षेत्री बन जाता है और बुरे संस्कारों व बुरी संगत से एक धर्मक्षेत्री भी कुरुक्षेत्री बन जाता है ।यही कारण है कि गीताकार ने सिर्फ कुरुक्षेत्र शब्द नहीं लिखा।जबकि युद्ध कुरुक्षेत्र के मैदान पर हो रहा था, इसलिए धर्मक्षेत्र लिखने की आवश्यकता नहीं थी।केवल कुरुक्षेत्र लिखकर काम चल सकता था, लेकिन जैसा कि पहले ही वर्णित किया कि गीता किसी बाहरी युद्ध की बात नहीं करती। ये तो आन्तरिक युद्ध की बात करती है और धर्मक्षेत्र और कुरुक्षेत्र ये युद्ध की दो अवस्थाएँ हैं ।जब युद्ध आत्मोन्नति के लिए आन्तरिक मन के अन्दर हो तो धर्मक्षेत्र और जब भौतिक उन्नति के लिए बाहर हो तो कुरुक्षेत्र। इसलिए गीताकार ने जानबूझकर कुरुक्षेत्र से पहले धर्मक्षेत्र लिखा ताकि स्पष्ट हो जाए कि धर्मक्षेत्र और कुरुक्षेत्र ये युद्ध के दो भिन्न– भिन्न मैदान है ।पहला आन्तरिक, दूसरा बाहरी ।

पहले का उद्देश्य ईश्वर की प्राप्ति, दूसरे का उद्देश्य भौतिक वस्तुओं की प्राप्ति। अब आपको तय करना है कि युद्ध कौन से धरातल पर करना है। गीता के प्रत्येक श्लोक में एक साधक के लिए कोई ना कोई सीख अवश्य है।

सार रूप में इसे अन्तर को आप इस सारणी से समझ सकते हैं–

	धर्मक्षेत्री	कुरुक्षेत्री
व्यक्ति का प्रकार	ईश्वर–खोजी	संसार–भोगी
उदाहरण	पाण्डव	कौरव
साधन	विवेकशील बुद्धि	मन
महत्व	साधना	मनोरंजन
क्षेत्र	आन्तरिक क्षेत्र	शरीर क्षेत्र
युद्ध का प्रकार	अन्दर का युद्ध	बाहर का युद्ध
प्रारम्भिक अवस्था	प्रारम्भ में परेशानी, निराशा निरुत्साह, द्वन्द्व, तत्पश्चात संघर्ष	प्रारम्भ में ही विजयोल्लास उत्साह, अभिमान तत्पश्चात घबराहट शुरु
अन्तिम परिणाम	ईश्वर–प्राप्ति और परमानन्द की प्राप्ति – विजय	खाली हाथ, अन्ततः अपार कष्ट–पराजय
उद्देश्य	विचार, ज्ञान, आत्मोन्नति महत्वपूर्ण	वस्तु, व्यक्ति व सुखोपभोग महत्वपूर्ण
कर्म का अथ	साधना कर्म	सांसारिक कर्म
मार्गदर्शक	कृष्ण रूपी पूर्ण सद्गुरू	शकुनि रूपी दुष्ट व बुरी संगत
तीन मित्र	1. श्रद्धा 2. तत्परता 3. इन्द्रिय संयम	1. अश्रद्धा 2. अज्ञान 3. संशय

(क्रमशः)

माँ अन्नपूर्णा की कथा

अन्नपूर्णा देवी हिन्दू धर्म में मान्य देवी-देवताओं में विशेष रूप से पूजनीय हैं। इन्हें माँ जगदम्बा का ही एक रूप माना गया है, जिनसे सम्पूर्ण विश्व का संचालन होता है। इन्हीं जगदम्बा के अन्नपूर्णा स्वरूप से संसार का भरण-पोषण होता है। अन्नपूर्णा का शाब्दिक अर्थ है- 'धान्य' (अन्न) की अधिष्ठात्री। सनातन धर्म की मान्यता है कि प्राणियों को भोजन माँ अन्नपूर्णा की कृपा से ही प्राप्त होता है। शिव की अर्धांगनी, कलियुग में माता अन्नपूर्णा की पुरी काशी है, किंतु सम्पूर्ण जगत् उनके नियंत्रण में है। बाबा विश्वनाथ की नगरी काशी के अन्नपूर्णाजी के आधिपत्य में आने की कथा बडी रोचक है।

पंडित रूपम व्यास
संकलन
भगवान श्री कृष्ण की शिक्षास्थली
महर्षि सांदीपनी आश्रम
उज्जैप, मध्य प्रदेश

भगवान शंकर जब पार्वती के संग विवाह करने के पश्चात् उनके पिता के क्षेत्र हिमालय के अन्तर्गत कैलास पर रहने लगे, तब देवी ने अपने मायके में निवास करने के बजाय अपने पति की नगरी काशी में रहने की इच्छा व्यक्त की। महादेव उन्हें साथ लेकर अपने सनातन गृह अविमुक्त-क्षेत्र (काशी) आ गए। काशी उस समय केवल एक महाश्मशान नगरी थी। माता पार्वती को सामान्य गृहस्थ स्त्री के समान ही अपने घर का मात्र श्मशान होना नहीं भाया। इस पर यह व्यवस्था बनी कि सत्य, त्रेता, और द्वापर, इन तीन युगों में काशी श्मशान रहे और कलियुग में यह अन्नपूर्णा की पुरी होकर बसे। इसी कारण वर्तमान समय में अन्नपूर्णा का मंदिर काशी का प्रधान देवीपीठ हुआ। स्कन्दपुराण के 'काशीखण्ड' में लिखा है कि भगवान विश्वेश्वर गृहस्थ हैं और भवानी उनकी गृहस्थी चलाती हैं। अत: काशीवासियों के योग-क्षेम का भार इन्हीं पर है। 'ब्रह्मवैवर्त्तपुराण' के काशी-रहस्य के अनुसार भवानी ही अन्नपूर्णा हैं। परन्तु जनमानस आज भी अन्नपूर्णा को ही भवानी मानता है। श्रद्धालुओं की ऐसी धारणा है कि माँ अन्नपूर्णा की नगरी काशी में कभी कोई भूखा नहीं सोता है।

माता अन्नपूर्णा से शिवजी ने भिक्षा क्यो मांगी – पौराणिक हिन्दू ग्रंथों के अनुसार प्राचीन समय में किसी कारणवश धरती बंजर हो गई, जिस वजह से धान्य-अन्न उत्पन्न नहीं हो सका, भूमि पर खाने-पीने का सामान खत्म होने लगा जिससे पृथ्वीवासियों की चिंता बढ़ गई। परेशान होकर वे लोग ब्रह्माजी और श्रीहरि विष्णु की शरण में गए और उनके पास पहुंचकर उनसे इस समस्या का हल निकालने की प्रार्थना की।

इसपर ब्रह्मा और श्रीहरि विष्णु जी ने पृथ्वीवासियों की चिंता को जाकर भगवान शिव को बताया। पूरी बात सुनने के बाद भगवान शिव ने पृथ्वीलोक पर जाकर गहराई से निरीक्षण किया। इसके बाद पृथ्वीवासियों की चिंता दूर करने के लिए भगवान शिव ने एक भिखारी का रूप धारण किया और माता पार्वती ने माता अन्नपूर्णा का रूप धारण किया। माता अन्नपूर्णा से भिक्षा मांगकर भगवान शिव ने धरती पर रहने वाले सभी लोगों में ये अन्न बांट दिया। इससे धरतीवासियों की अन्न की समस्या का अंत हो गया और तभी से मार्गशीर्ष पूर्णिमा के दिन अन्नपूर्णा जयंती मनाई जाने लगी।

अन्नपूर्णा माता की उपासना से सारे पाप नष्ट हो जाते हैं। ये अपने भक्त की सभी विपत्तियों से रक्षा करती हैं। इनके प्रसन्न हो जाने पर अनेक जन्मों से चली आ रही दरिद्रता का भी निवारण हो जाता है। ये अपने भक्त को सांसारिक सुख प्रदान करने के साथ मोक्ष भी प्रदान करती हैं। तभी तो ऋषि-मुनि इनकी स्तुति करते हुए कहते हैं।

शोषिणीसर्वपापानांमोचनी सकलापदाम्।
दारिर्द्यदमनीनित्यंसुख–मोक्ष–प्रदायिनी।।

काशी की पारम्परिक 'नवगौरी यात्रा' में आठवीं भवानी गौरी तथा नवदुर्गा यात्रा में अष्टम महागौरी का दर्शन–पूजन अन्नपूर्णा मंदिर में ही होता है। अष्टसिद्धियों की स्वामिनी अन्नपूर्णाजी की चौत्र तथा आश्विन के नवरात्र में अष्टमी के दिन 108 परिक्रमा करने से अनन्त पुण्य फल प्राप्त होता है। सामान्य दिनों में अन्नपूर्णा माता की आठ परिक्रमा करनी चाहिए। प्रत्येक मास के शुक्ल पक्ष की अष्टमी के दिन अन्नपूर्णा देवी के निमित्त व्रत रखते हुए उनकी उपासना करने से घर में कभी धन–धान्य की कमी नहीं होती है।

भविष्यपुराण में मार्गशीर्ष मास के अन्नपूर्णा व्रत की कथा का विस्तार से वर्णन मिलता है। काशी के कुछ प्राचीन पंचांग मार्गशीर्ष की पूर्णिमा में अन्नपूर्णा जयंती का पर्व प्रकाशित करते हैं। अन्नपूर्णा देवी का रंग जवापुष्प के समान है। इनके तीन नेत्र हैं, मस्तक पर अर्द्धचन्द्र सुशोभित है। भगवती अन्नपूर्णा अनुपम लावण्य से युक्त नवयुवती के सदृश्य हैं। बन्धूक के फूलों के मध्य दिव्य आभूषणों से विभूषित होकर ये प्रसन्न मुद्रा में स्वर्ण–सिंहासन पर विराजमान हैं। देवी के बायें हाथ में अन्न से पूर्ण माणिक्य, रत्न से जडा पात्र तथा दाहिने हाथ में रत्नों से निर्मित कलछूल है। अन्नपूर्णा माता अन्न दान में सदा तल्लीन रहती हैं। देवीभागवत में राजा बृहद्रथ की कथा से अन्नपूर्णा माता और उनकी पुरी काशी की महिमा उजागर होती है। भगवती अन्नपूर्णा पृथ्वी पर साक्षात कल्पलता हैं, क्योंकि ये अपने भक्तों को मनोवांछित फल प्रदान करती हैं। स्वयं भगवान शंकर इनकी प्रशंसा में कहते हैं– 'मैं अपने पांचों मुख से भी अन्नपूर्णा का पूरा गुण–गान कर सकने में समर्थ नहीं हूँ।' यद्यपि बाबा विश्वनाथ काशी में शरीर त्यागने वाले को तारक–मंत्र देकर मुक्ति प्रदान करते हैं, तथापि इसकी याचना माँ अन्नपूर्णा से ही की जाती है। गृहस्थ धन–धान्य की तो योगी ज्ञान–वैराग्य की भिक्षा इनसे मांगते हैं।

अन्नपूर्णेसदा पूर्णेशङ्करप्राणवल्लभे।
ज्ञान–वैराग्य–सिद्धयर्थम् भिक्षाम्देहिचपार्वति।।

मंत्र–महोदधि, तन्त्रसार, पुरश्चर्यार्णव आदि ग्रन्थों में अन्नपूर्णा देवी के अनेक मंत्रों का उल्लेख तथा उनकी साधना–विधि का वर्णन मिलता है। मंत्रशास्त्र के सुप्रसिद्ध ग्रंथ 'शारदातिलक' में अन्नपूर्णा के सत्रह अक्षरों वाले निम्न मंत्र का विधान वर्णित है–

'ह्रीं नमः भगवतिमाहेश्वरिअन्नपूर्णेस्वाहा'

मंत्र को सिद्ध करने के लिए इसका सोलह हजार बार जप करके, उस संख्या का दशांश घी से युक्त अन्न के द्वारा होम करना चाहिए। जप से पूर्व यह ध्यान करना होता है।

रक्ताम्विचित्रवसनाम्नवचन्द्रचूडामन्नप्रदाननिरताम्स्तनभारनम्राम्।
नृत्यन्तमिन्दुशकलाभरणंविलोक्यहृष्टांभजेद्भगवतीम्भवदुःखहन्त्रीम्

अर्थात **'जिनका शरीर रक्त वर्ण का है, जो अनेक रंग के सूतों से बुना वस्त्र धारण करने वाली हैं, जिनके मस्तक पर बालचंद्र विराजमान हैं, जो तीनों लोकों के वासियों को सदैव अन्न प्रदान करने में व्यस्त रहती हैं, यौवन से सम्पन्न, भगवान शंकर को अपने सामने नाचते देख प्रसन्न रहने वाली, संसार के सब दुःखों को दूर करने वाली, भगवती अन्नपूर्णा का मैं स्मरण करता हूँ।'**

प्रातःकाल नित्य 108 बार अन्नपूर्णा मंत्र का जप करने से घर में कभी अन्न– धन का अभाव नहीं होता। शुक्ल पक्ष की अष्टमी के दिन अन्नपूर्णा का पूजन–हवन करने से वे अति प्रसन्न होती हैं। करुणा मूर्ति ये देवी अपने भक्त को भोग के साथ मोक्ष प्रदान करती हैं। सम्पूर्ण विश्व के अधिपति विश्वनाथ की अर्धांगिनी अन्नपूर्णा सबका बिना किसी भेद–भाव के भरण–पोषण करती हैं। जो भी भक्ति–भाव से इन वात्सल्यमयी माता का अपने घर में आवाहन करता है, माँ अन्नपूर्णा उसके यहाँ सूक्ष्म रूप से अवश्य वास करती हैं।

माता अन्नपूर्णा की व्रत कथा – काशी निवासी धनंजय की पत्नी का नाम सुलक्षणा था । उसे अन्य सब सुख प्राप्त थे, केवल निर्धनता ही उसके दुःख का कारण थी। यह दुःख उसे हर समय सताता था। एक दिन सुलक्षणा पति से बोली– स्वामी! आप कुछ उद्यम करो तो काम चले। इस प्रकार कब तक काम चलेगा? सुलक्षणा की बात धनंजय के मन में बैठ और वह उसी दिन विश्वनाथ शंकर जी को प्रसन्न करने के लिए बैठ गया और कहने लगा– हे देवाधिदेव विश्वेश्वर! मुझे पूजा–पाठ कुछ आता नहीं है, केवल तुम्हारे भरोसे बैठा हूँ । इतनी विनती करके वह दो–तीन दिन भूखा–प्यासा बैठा रहा । यह देखकर भगवान शंकर ने उसके कान में 'अन्नपूर्णा ! अन्नपूर्णा!! अन्नपूर्णा!!!' इस प्रकार तीन बार कहा। यह कौन, क्या कह गया ? इसी सोच में धनंजय पड़ गया कि मन्दिर से आते ब्राह्मणों को देखकर पूछने लगा– पंडितजी ! अन्नपूर्णा कौन है ? ब्राह्मणों ने कहा– तू अन्न छोड़ बैठा है, सो तुझे अन्न की ही बात सूझती है । जा घर जाकर अन्न ग्रहण कर ।

धनंजय घर गया, स्त्री से सारी बात कही, वह बोली–नाथ! चिंता मत करो, स्वयं शंकरजी ने यह मंत्र दिया है। वे स्वयं ही खुलासा करेंगे। आप फिर जाकर उनकी आराधना करो । धनंजय फिर जैसा का तैसा पूजा में बैठ गया। रात्रि में शंकर जी ने आज्ञा दी । कहा– तू पूर्व दिशा में चला जा । वह अन्नपूर्णा का नाम जपता जाता और रास्ते में फल खाता, झरनों का पानी पीता जाता । इस प्रकार कितने ही दिनों तक चलता गया । वहां उसे चांदी सी चमकती बन की शोभा देखने में आई। सुन्दर सरोवर देखने में या, उसके किनारे कितनी ही अप्सराएं झुण्ड बनाए बैठीं थीं । एक कथा कहती थीं । और सब 'मां अन्नपूर्णा' इस प्रकार बार–बार कहती थीं। यह अगहन मास की उजेली रात्रि थी और आज से ही व्रत का ए आरम्भ था । जिस शब्द की खोज करने वह निकला था, वह उसे वहां सुनने को मिला। धनंजय ने उनके पास जाकर पूछा– हे देवियो! आप यह क्या करती हो? उन सबने कहा हम सब मां अन्नपूर्णा का व्रत करती हैं। व्रत करने से की गई पूजा क्या होती है? यह किसी ने किया भी है? इसे कब किया जाए? कैसा व्रत है में और कैसी विधि है? मुझसे भी कहो। वे कहने लगीं– इस व्रत को सब कोईकर सकते हैं। इक्कीस दिन तक के लिए 21 गांठ का सूत लेना चाहिए। 21 दिन यदि न बनें तो एक दिन उपवास करें, यह भी न बनें तो केवलकथा सुनकर प्रसाद लें। निराहार रहकर कथा कहें, कथा सुनने वाला कोई न मिले तो पीपल के पत्तों को रख सुपारी या घृत कुमारी (गुवारपाठ) वृक्ष को सामने कर दीपक को साक्षी कर सूर्य, गाय, तुलसी या महादेव को बिना कथा सुनाए मुख में दाना न डालें। यदि भूल से कुछ पड़ जाए तो एक दिवस फिर उपवास करें। व्रत के दिन क्रोध न करें और झूठ न बोलें।

धनंजय बोला– इस व्रत के करने से क्या होगा? वे कहने लगीं– इसके करने से अन्धों को नेत्र मिले, लूलों को हाथ मिले, निर्धन के घर धन आए, बांझी को संतान मिले, मूर्ख को विद्या आए, जो जिस कामना से व्रत करे, मां उसकी इच्छा पूरी करती है। वह कहने लगा– बहिनों! मेरे भी धन नहीं है, विद्या नहीं है, कुछ भी तो नहीं है, मैं तो दुखिया ब्राह्मण हूँ, मुझे इस व्रत का सूत दोगी? हां भाई तेरा कल्याण हो , तुझे देंगी, ले इस व्रत का मंगलसूत ले। धनंजय ने व्रत किया। व्रत पूरा हुआ, तभी सरोवर में से 21 खण्ड की सुवर्ण सीढ़ी हीरा मोती जड़ी हुई प्रकट हुई। धनंजय जय 'अन्नपूर्णा' 'अन्नपूर्णा' कहता जाता था। इस प्रकार कितनी ही सीढ़ियां उतर गया तो क्या देखता है कि करोड़ों सूर्य से प्रकाशमान अन्नपूर्णा का मन्दिर है, उसके सामने सुवर्ण सिंघासन पर माता अन्नपूर्णा विराजमान हैं। सामने भिक्षा हेतु शंकर भगवान खड़े हैं। देवांगनाएं चंवर डुलाती हैं। कितनी ही हथियार बांधे पहरा देती हैं। धनंजय दौड़कर जगदम्बा के चरणों में गिर गया। देवी उसके मन का क्लेश जान गई ।

धनंजय कहने लगा– माता! आप तो अन्तर्यामिनी हो। आपको अपनी दशा क्या बताऊँ? माता बोली – मेरा व्रत किया है, जा संसार तेरा सत्कार करेगा । माता ने धनंजय की जिह्वा पर बीज मंत्र लिख दिया। अब तो उसके रोम–रोम में विद्या प्रकट हो गई। इतने में क्या देखता है कि वह काशी विश्वनाथ के मन्दिर में खड़ा है। मां का वरदान ले धनंजय घर आया। सुलक्षणा से सब बात कही। माता जी की कृपा से उसके घर में सम्पत्ति उमड़ने लगी। छोटा सा घर बहुत बड़ा गिना जाने लगा। जैसे शहद के छत्ते में मक्खियां जमा होती हैं, उसी प्रकार अनेक सगे सम्बंधी आकर उसकी बड़ाई करने लगे। कहने लगे–इतना धन और इतना बड़ा घर, सुन्दर संतान नहीं तो इस कमाई का कौन भोग करेगा?

सुलक्षणा से संतान नहीं है, इसलिए तुम दूसरा विवाह करो। अनिच्छा होते हुए भी धनंजय को दूसरा विवाह करना पड़ा और सती सुलक्षणा को सौत का दु:ख उठाना पड़ा । इस प्रकार दिन बीतते गय फिर अगहन मास आया। नये बंधन से बंधे पति से सुलक्षणा ने कहलाया कि हम व्रत के प्रभाव से सुखी हुए हैं। इस कारण यह व्रत छोड़ना नहीं चाहिए। यह माता जी का प्रताप है। जो हम इतने सम्पन्न और सुखी हैं। सुलक्षणा की बात सुन धनंजय उसके यहां आया और व्रत में बैठ गया। नयी बहू को इस व्रत की खबर नहीं थी। वह धनंजय के आने की राह देख रही थी । दिन बीतते गये और व्रत पूर्ण होने में तीन दिवस बाकी थे कि नयी बहू को खबर पड़ी। उसके मन में ईर्ष्या की ज्वाला दहक रही थी । सुलक्षणा के घर आ पहुँची और उसने वहां भगदड़ मचा दी। वह धनंजय को अपने साथ ले गई । नये घर में धनंजय को थोड़ी देर के लिए निद्रा ने आ दबाया। इसी समय नई बहू ने उसका व्रत का सूत तोड़कर आग में फेंक दिया।

अब तो माता जी का कोप जाग गया। घर में अकस्मात आग लग गई, सब कुछ जलकर खाक हो गया। सुलक्षणा जान गई और पति को फिर अपने घर ले आई। नई बहू रूठ कर पिता के घर जा बैठी। पति को परमेश्वर मानने वाली सुलक्षणा बोली– नाथ ! घबड़ाना नहीं। माता जी की कृपा अलौकिक है। पुत्र कुपुत्र हो जाता है पर माता कुमाता नहीं होती। अब आप श्रद्धा और भक्ति से आराधना शुरू करो। वे जरूर हमारा कल्याण करेंगी । धनंजय फिर माता के पीछे पड़ गया। फिर वहीं सरोवर सीढ़ी प्रकट हुई, उसमें ' मां अन्नपूर्णा' कहकर वह उतर गया। वहां जा माता जी के चरणों में रुदन करने लगा । माता प्रसन्न हो बोलीं–यह मेरी स्वर्ण की मूर्ति ले, उसकी पूजा करना, तू फिर सुखी हो जायेगा, जा तुझे मेरा आशीर्वाद है। तेरी स्त्री सुलक्षणा ने श्रद्धा से मेरा व्रत किया है, उसे मैंने पुत्र दिया है।

धनंजय ने आँखें खोलीं तो खुद को काशी विश्वनाथ के मन्दिर में खड़ा पाया। वहां से फिर उसी प्रकार घर को आया। इधर सुलक्षणा के दिन चढ़े और महीने पूरे होते ही पुत्र का जन्म हुआ। गांव में आश्चर्य की लहर दौड़ गई। मानता आने लगा। इस प्रकार उसी गांव के नि:संतान सेठ के पुत्र होने पर उसने माता अन्नपूर्णा का मन्दिर बनवा दिया, उसमें माता जी धूमधाम से पधारीं, यज्ञ किया और धनंजय को मन्दिर के आचार्य का पद दे दिया। जीविका के लिए मन्दिर की दक्षिणा और रहने के लिए बड़ा सुन्दर सा भवन दिया। धनंजय स्त्री–पुत्र सहित वहां रहने लगा। माता जी की चढ़ावे में भरपूर आमदनी होने लगी। उधर नई बहू के पिता के घर डाका पड़ा, सब लुट गया, वे भीख मांगकर पेट भरने लगे। सुलक्षणा ने यह सुना तो उन्हे बुला भेजा, अलग घर में रख लिया और उनके अन्न–वस्त्र का प्रबंध कर दिया। धनंजय, सुलक्षणा और उसका पुत्र माता जी की कृपा से आनन्द से रहने लगे। माता जी ने जैसे इनके भण्डार भरे वैसे सबके भण्डार भरें।

मनोकामना

समीर उपाध्याय 'ललित'
जिला सुरेन्द्रनगर, गुजरात

सुमित्रा अपने पति के साथ लड्डू गोपाल के मंदिर में प्रसाद का भोग चढ़ाकर सभी दर्शनार्थियों को प्रसाद देती है।

एक बूढ़ी औरत ने पूछा– 'बेटी तुम बड़ी श्रद्धालु दिखती हो। क्या कोई व्रत रखा है?'

सुमित्रा– 'मां, आशीर्वाद दीजिए कि भगवान अब एक मनोक. ामना पूरी कर दे। बेटे की किलकारी के बिना आंगन सूना लगता है।'

बूढ़ी औरत– 'बेटी, क्या अभी तक तुम्हारी गोद भराई नहीं हुई?'

सुमित्रा– 'नहीं नहीं मां, मैं तो दो बेटियों की मां हूं। बस अब एक बेटे की कमी है। गर्भ रहता ही नहीं। अब लड़के के लिए दवाई शुरू की है। इसलिए लड्डू गोपाल को भोग चढ़ाने का व्रत रखा है।'

बूढ़ी औरत– 'बेटी, बुरा मत मानना। बेटे के लिए इतना तप और तपस्या करती हो, लेकिन बुढ़ापे का सहारा बनेगी बेटियां ही।'

सुमित्रा– 'मां जी, ऐसा क्यों बोल रही है? बेटियां तो पराया धन होती हैं। कल ब्याह कर अपने ससुराल चली जाएगी। वंश को बढ़ाने वाला भी तो कोई चाहिए न? और बेटा होगा तो बुढ़ापा सुधर जाएगा।'

बूढ़ी औरत सुमित्रा की बात सुनकर हंसने लगी। उन की हंसी को देख कर सुमित्रा को थोड़ा आश्चर्य हुआ। उसने बुड्ढी औरत से पूछा– ष्आप ऐसे क्यों हंस रही है?'

बुड्ढी औरत– 'जब मेरी गोद भराई नहीं होती थी तब मैं भी तुम्हारी तरह बेटे के लिए तरसती थी। कई मन्नते भी रखी थी। ऊपर वाले ने एक नहीं चार–चार बेटे दिएं।'

सुमित्रा– 'आप तो बड़ी भाग्यवान है।'

बूढ़ी औरत– 'कैसे भाग्यवान कहूं अपने आप को? बुढ़ापे में ही पति–पत्नी को एक दूसरे के सहारे की जरूरत पड़ती है। लेकिन लड़कों ने हम दोनों को अलग कर दिया है।'

सुमित्रा– 'मतलब?'

बूढ़ी औरत– ष्एक भी लड़का हम दोनों को साथ रखने के लिए तैयार नहीं है। इसलिए बड़े दो लड़कों ने मेरे पति की छह, छह महीने की बारी रखी है और छोटे दो लड़को ने मेरी। जब एक–दूसरे की याद आती है तब दोनों मोबाइल पर बातचीत कर मन को हल्का कर लेते हैं।'

सुमित्रा– 'भगवान ऐसी संतान किसी को न दें।'

बूढ़ी औरत– 'बेटी, मैं तुम्हें यही समझाना चाहती हूं कि बेटे का मोह छोड़। इस दुनिया में कोई किसी का संगी–साथी नहीं। बेटियों को पढ़ओ–लिखाओ और काबिल बनाओ। बेटियां ईश्वर का अनमोल उपहार होती हैं। बेटियों में जो अपनापन होता है वो आज–कल के जमाने में बेटों में नहीं होता। बड़े खुशनसीब होते हैं वे माता–पिता जिनके घर जन्म लेती हैं बेटियां। तुम तो बड़ी भाग्यवान हो। मुझे तो बड़ा अफसोस है कि भगवान ने मुझे एक भी बेटी नहीं दी।'

सुमित्रा और उसका पति बूढ़ी औरत की बात सुनकर गहन चिंतन करने के लिए विवश हो गएं। थोड़ी देर के बाद दोनों ने मंदिर के बगीचे में खेल रही अपनी दोनों बेटियों को बुलाकर गले लगा कर कहा– 'आज से तुम दोनों हमारे लिए बेटे के समान हो। तुम दोनों को खूब पढ़ाएंगे–लिखाएंगे और काबिल बनाएंगे और एक दिन दुनिया भी कहेगी की बेटियां हो तो ऐसी।'

सुमित्रा और उसका पति अपनी दोनों बेटियों को लेकर बूढ़ी औरत के पैर छूकर बिना किसी अपेक्षा के संतुष्टि के भाव के साथ मंदिर के सोपान नीचे उतर गएं। ■

गोरक्ष शक्तिधाम सेवार्थ फाउण्डेशन
www.gssfoundation.org
editor.adhyatmsandesh@gmail.com
m.facebook.com/अध्यात्म संदेश
मासिक
अध्यात्म संदेश
जनकल्याण एवं राष्ट्रोत्थान को समर्पित धर्म, संस्कृति, अध्यात्म चिंतन का मासिक ई-पत्र

श्रेष्ठता के प्रति नैसर्गिक जुड़ाव

सकारात्मक मनोभाव का सानिध्य और आत्म साक्षात्कार की स्थितियां

> **स्वयं को जानने एवं मानने की परिकल्पनाओं के भीतर वास्तविक पस्थितियों का प्रतिफल भले ही शून्य हो लेकिन अन्त:करण सदा इस बात की प्रेरणा प्रदान करता है जिसमें आत्म साक्षात्कार की सुखद स्थितियॉ निर्मित होती हैं तथा इसके परिणाम श्रेष्ठ अवस्था के निर्माण में कहीं न कहीं साधक बन जाया करते हैं।**

डॉ. अजय शुक्ला
गोल्ड मेडलिस्ट इंटरनेशनल ह्यूमन राइट्स
मिलेनियम अवार्ड
डायरेक्टर, स्प्रीचुअल रिसर्च
स्टडी एंड एजुकेशनल ट्रेनिंग सेंटर
देवास, मध्य प्रदेश

जीवन में सात्विकता के प्रति संवेदनशील रहते हुए कर्म क्षेत्र के अन्तर्गत् उत्कृष्टता हासिल करना श्रेष्ठ चिन्तन का परिणाम होता है। अच्छाई के लिये आस्था की स्थितियाँ निर्मित हो जाये और मानवीय मन के नम भाव को वृहद स्तर पर स्वीकृत कर लिया जाये तो निश्चित रूप से कल्याण के मार्ग प्रशस्त हो जायेगें। सकारात्मक मनोभाव की उत्पत्ति हेतु प्रयास किया जाना प्रबल पुरूषार्थ का प्रमाण होता है क्योंकि इस प्रकार का सानिध्य यदि निरन्तर प्राप्त होता रहे तो मंगलकारी अनुभूतियों की उपस्थिति को सुनिश्चित बनाया जा सकता है। स्वयं को जानने के संदर्भ से जुड़े मामलों में प्राय: यह अभिव्यक्त किया जाता है कि आत्म साक्षात्कार की स्थितियों के अन्तर्गत् कई बार इस बात का आभास होता है कि आत्मा स्वयं का मित्र एवं शत्रु भी है। भावनात्मक पक्ष के जितने आयाम सम्बन्धों की गहराई से सम्बद्ध होते हैं प्राय: उनमें उत्कृष्टता के प्रति नैसर्गिक जुड़ाव किसी न किसी रूप में परिलक्षित हुआ करते हैं। व्यक्तिगत् जीवन में सर्वोत्तम अवस्था तक कैसे पहुँचा जाये यह पुरूषार्थ की सकारात्मक दिशा पर निर्भर करता है जिसमें श्रेष्ठता की अनुभूति के लिये पर्याप्त गुंजाईश होती है। अन्त:करण के सकारात्मक मनोभावों का अधिकतम् सदुपयोग करने की लालसा लगभग सभी व्यक्तियों में होती है परन्तु स्वयं की संकुचित मनसिकता का नकारात्मक एवं स्वार्थपूर्ण दबाव तथा कई बार बाह्य जगत् की बाधायें भी इस श्रेष्ठ स्थिति की अनुभूति से व्यक्ति को वंचित कर दिया करती है।

श्रेष्ठता के लिये संयोग और पुरूषार्थ की स्थितियों को किस सीमा तक जिम्मेदार ठहराया जाये यह केवल सामाजिक, दार्शनिक एवं मनोवैज्ञानिक अवधारणा से सम्बद्ध संदर्भ नहीं है बल्कि आध्यात्मिक जगत् की वह प्रासंगिक स्थिति है जिसमें संचित कर्म का विशिष्ट योगदान होता है। प्रबल पुरूषार्थ के द्वारा यदि व्यक्तिगत् निर्णयन का सामाजिक पक्ष उत्थान एवं पतन का निष्पक्ष चिन्तन करने में सक्षम हो जाये तो उन्हें यह स्पष्ट रूप से मंगलकारी अनुभूति हो जायेगी कि श्रेष्ठ स्थितियों के लिये सकारात्मक प्रयास महान् संतों ने विभिन्न पवित्र ग्रंथों एवं श्रेष्ठ पंथों के माध्यम से सम्पादित किये उसके पश्चात् भी नैतिकता न्यूनतम् क्यों होती गई?

व्यक्ति, व्यवस्था और पुरुषार्थ का आरंभिक काल स्वर्णिम स्वरूप में रहता है जिसे सतोप्रधान अवस्था की संज्ञा प्रदान की जाती है तत्पश्चात् रजोप्रधान से होते हुए तमोप्रधान स्थिति तक विस्तार तो हो जाता है लेकिन विकृतियाँ भी अपनी गहरी जड़ें जमा लिया करती हैं। श्रेष्ठता के प्रति नैसर्गिक जुड़ाव की अनुभूतियाँ अपने स्वरूप को केवल प्रकृति प्रदत्त स्थितियों के अन्तर्गत् सम्मिलित करती हैं जिसे जीवन के स्थाई भाव में परिवर्तित करने के लिये सजगता एवं सहजता के साथ सकारात्मक मनोभाव के सानिध्य और नियमित रूप से आत्म साक्षात्कार की वास्तविकता को स्वीकार करने की आवश्यकता होती है। जब निर्धारित कार्य क्षेत्र में उत्कृष्टता को कैरियर के रूप में चयनित कर लिया जाता है तब श्रेष्ठ स्थितियों के समीप पहुँचना सुनिश्चित हो जाता है क्योंकि जिस क्षेत्र में कार्य करने के अवसर प्राप्त होते हैं उसमें स्वयं को उच्च स्थान पर पूर्ण गुणवत्ता के साथ स्थापित करना श्रेष्ठता के प्रति नैसर्गिक जुड़ाव का प्रमाण होता है।

भावनात्मक सम्बन्ध – प्रकृति के द्वारा प्रदान की गई स्थूल एवं सूक्ष्म प्राप्तियों के प्रति आभारयुक्त मानस की स्थितियाँ सामान्य दशाओं के अन्तर्गत् आनंद स्वरूप में निर्मित हुआ करती हैं। भावनात्मक पक्षों के लिये प्राणी जगत् का जुड़ाव किसी न किसी प्रकार से वास्तविकता से पूर्णतया सम्बद्ध रहता है जिसमें अभिव्यक्ति की सुखद और दुःखद प्रस्तुतियों के लिये स्थूलता का बोध प्रायः पूर्ण दबाव के साथ कार्यरत रहता है। जीवन की विविधता के मध्य भाव जगत् की प्रधानता में भी भेद दृष्टि को अपनाने के प्रति 'अन्तःकरण से निजी भागीदारी इतनी अधिक हो जाती है कि सूक्ष्म धारणाओं से धीरे–धीरे अपने को कब अलग कर लिया गया इसका आभास न तो स्वयं को और न ही दूसरों को हो सके', जैसी भूमिका का निर्माण अनभिज्ञ रूप से हमारे व्यवहार में धीरे–धीरे होने लगता है। उत्थान की स्वीकारोक्ति होने के साथ–साथ श्रेष्टता के व्यापक परिदृश्य में स्वयं को परिवर्तित कर देना प्रकृति की पवित्र भावना का संपूर्ण निष्ठा से सम्मान करने के समतुल्य होता है क्योंकि यहाँ व्यावहारिक स्वरूप में भावनात्मक तत्वों की अति संवेदनशील इकाई को भी महत्व प्रदान करके उच्चता के श्रेष्ठ आयाम को आत्मसात करने की सम्पूर्ण शक्ति का विनियोजन किया जाना स्वयं के गौरवपूर्ण सौभाग्य का पर्याय माना जाता है। जीवन के परिवेश को समझना और स्वीकार करना, उस सत्य को व्यक्त करता है जिसमें सम्बन्ध बनाने तथा उसे निभाने के विरोधाभास पहले व्यक्तिगत् स्तर पर उभरकर सम्मुख आते हैं तत्पश्चात् यह स्थिति पारिवारिक एवं सामाजिकता के पक्षों पर भी अपनी स्थितियों को व्यक्त कर दिया करते हैं।

श्रेष्ठता के प्रति नैसर्गिक जुड़ाव का आत्मिक परिवेश सदा इस बात के लिये प्रेरित करता है कि समीपता की निरन्तर अनुभूति अलौकिक भावों को जागृत करने में मददगार होती है जबकि कई बार केवल स्मृति के लिये प्रयास करना लौकिक बन्धन का स्वरूप हो सकता है जिसमें स्थाई सुख–शान्ति के लिये अधिक गुंजाईश नहीं होती है। प्रत्येक सम्बन्ध में यह सावधानी बरतनी होती है कि कहीं हम से कोई दुःख न पहुँच जाये जबकि दुःख प्राप्त करने के लिये हम स्वयं भी जिम्मेदार होते हैं क्योंकि अत्यधिक भावनात्मक होकर पीड़ा स्वीकार करके यह प्रमाणित करने की आन्तरिक इच्छा मन में रहती है कि हमारे सम्मुख उपस्थित पीड़ित पक्षकार का दुःख कम हो जायेगा यद्यपि यही स्थिति एक दिन भावनात्मक सम्बन्धों को समाप्त कर देने का माध्यम बन जाती है जिसमें अन्तिम अभिव्यक्ति का स्वरूप व्यक्ति का निरन्तर दुःख व्यक्त करने की आदत के रूप में प्रकट हो जाया करता है। सामान्य जीवन में मस्तिष्क से ली गई शपथ किसी बन्धनकारी स्वरूप को भले ही सम्बन्धों के निर्वहन करने के लिये दबाव बनाने में सफल हो जाये लेकिन हृदय से की गई दृढ़ प्रतिज्ञा श्रेष्ठता के समीप रहती है जो भावनात्मक सम्बन्ध बनाकर आत्मिक स्थिति को सदा विकसित करते हुए अग्रसर रहने की प्रेरणा प्रदान करती है।

भावनात्मक सम्बन्धों का जीवन के विकास से सकारात्मक सरोकार रहता है जिसमें निःस्वार्थता की भूमिका का स्वरूप व्यावहारिक दृष्टिकोण से मददगार अनुभूतियों से सम्बद्ध संतुष्टि के भाव पक्ष द्वारा सम्पन्न हुआ करता है।

सर्वोत्तम अवस्था – मनोभाव की विविधताओं के पश्चात् व्यक्तिगत् स्तर पर इस बात का स्पष्टीकरण प्रस्तुत करना अत्यन्त कठिन कार्य होता है जिसमें जीवन की उच्च अवस्थाओं का विस्तार से वर्णन समाहित किया गया हो। निजी जीवन का एक पक्ष जहाँ उत्पन्न स्थितियों को किसी कार्य के हो जाने के लिये जिम्मेदार घटक मानता है वहीं दूसरा पक्ष इस तर्क की स्वीकारोक्ति पर ही प्रश्नचिन्ह लगाने के लिये तत्पर हो जाया करता है। किन्हीं विशिष्ट प्रसंगों के अन्तर्गत् कर्म की प्रधानता को जीवन की आवश्यकता के रूप में परिलक्षित कर दिया जाता है तो कहीं–कहीं भाग्य ही सम्पूर्ण कहानी को उजागर करने में अपनी अभिव्यक्ति को सुनिश्चित कर देता है। श्रेष्टता के प्रति नैसर्गिक जुड़ाव का चिरस्थाई स्वरूप जीवन की सर्वोत्तम अवस्था का प्रमाण होता है जिसमें व्यक्ति को सकारात्मक मनोभाव का सानिध्य स्वतः ही प्राप्त हो जाता है तथा उसके अनुभवी प्रसंगों में आत्म साक्षात्कार की स्थितियों का योगदान गुणात्मक रूप से बढ़ जाया करता है। स्वयं की अवस्था उच्चकोटि की बनी रहे, यह

मनोकामना प्रायः सभी व्यक्तियों द्वारा किसी न किसी रूप में प्रकट की जाती है लेकिन भाव एवं कर्म जगत् के मध्य एक अन्तराल उपस्थित हो जाने से इस श्रेष्ठ स्थिति की निरन्तरता अखण्ड स्वरूप में निर्मित नहीं रह पाती है। जीवन के बोध की प्रासंगिकता सदैव इस बात की प्रेरणा प्रदान करती है जिसमें आत्मिक मनोदशा की पवित्रता को स्वीकार करते हुए सर्वोत्तम अवस्था को चिरस्थाई बनाने की संकल्पना अन्तर्निहित रहती है।

अच्छाई के प्रति सच्चाई से जुड़ी अवस्थाओं को किसी संदर्भ एवं प्रसंग की आवश्यकता नहीं होती है क्योंकि किसी भी ज्ञान और तत्व मीमांसा से केवल जानकारी तक पहुँचने की स्थितियाँ बन सकती है, लेकिन जीवन की सर्वोत्तम अवस्था को प्राप्त नहीं किया जा सकता है। मानवीय संवेदनाओं के प्रति किसी बुद्धिमता की प्रायोगिक भूमिका अपनी महत्ता को भले ही प्रतिपादित करने की चेष्टायें दीर्घकालीन परिवेश तक करती रहें परन्तु अन्ततः भावनात्मक निर्मलता के उज्जवल स्वरूप ही श्रेष्ठता के प्रति नैसर्गिक जुड़ाव को सदा काल के लिये स्थापित कर सकने में सफल हो सकते हैं। जीवन के निर्माण का सबल स्वरूप जब ध्यान एवं धारणा से युक्त हो जाने की पवित्र स्थितियों में परिवर्तित हो जाता है तब आत्मिक रूप, व्यापकता को अंगीकार करते हुए सर्वोत्तम अवस्था को स्वमेव प्राप्त कर लेता है।

चिन्तनशील प्रयास – परिवर्तन के संदर्भों में जीवन की स्थितियों का विवेचन करना सामान्यतः विविध प्रसंगों से जुड़ा हुआ स्वरूप होता है जिसमें उर्ध्वगामी परिवेश की प्रासंगिकता एक महत्वपूर्ण प्रस्थान बिन्दु के रूप में प्रकट होती है। जीवन में शुभ के प्रति मानवीय बोध सदा सांकेतिक गतिशीलता के साथ अग्रसर होना चाहता है जबकि लाभ की मानसिकता में भौतिकता का आँकलन करने की निजी चेष्टाओं से पीछे हटने के लिये प्रायः व्यक्ति तत्पर नहीं हो पाता है। स्वयं के द्वारा श्रेष्ठता के प्रति नैसर्गिक जुड़ाव में अभिवृद्धि करने हेतु उच्च स्तर के साहित्य का पठन–पाठन एवं मनन–चिन्तन करने के व्यावहारिक संस्करण के अन्तर्गत् जीवन में धारणा के पश्चात् ही उसके वर्णन करने की प्रक्रिया सम्मिलित होती है। ज्ञान की विविधताओं के पश्चात् भी अधिकतम् को आत्मसात् करने की उत्कण्ठा इस बात का प्रमाण होती है कि व्यक्तिगत् जीवन का परिवेश केवल कुछ प्राप्त करके संतुष्टता के संतुलन तक निजता को स्थापित करना नहीं चाहता बल्कि चिन्तन के व्यापक परिदृश्य में जिज्ञासु प्रवृत्ति के द्वारा अनंत की स्थितियों में स्वयं को आबद्ध कर देना मुख्य ध्येय बन जाता है। कई बार जीवन में सेवा धर्म को स्वीकार करते हुए पुरुषार्थ की उँचाई तक पहुँचने का प्रयास किया जाता है जिसकी पृष्ठभूमि के अन्तर्गत् यह भाव सन्निहित रहता कि मन, वचन एवं कर्म के मध्य संतुलन बना रहेगा तथा कुछ समय के पश्चात् सकारात्मक मनोभावों का निर्माण होने लगेगा और इस सात्विकता के सानिध्य से स्वयं का परिष्कार सुनिश्चित हो जाएगा।

प्रत्येक मनुष्य की अभिलाषा का केन्द्रबिन्दु उच्च स्थितियों तक स्वयं को पहुँचाना होता है लेकिन ज्ञानार्जन के साथ एकाग्रता की महत्ता को स्वीकार करते हुए तीव्र गति से धारणात्मक स्वरूप की अवधारणा को जीवन की पवित्र जिजीविषा से सम्बद्ध करने की कुशल कर्म निष्ठा द्वारा श्रेष्ठता के प्रति प्रकृति प्रदत्त सम्बन्ध को प्रतिपादित किया जा सकता है। व्यक्तिगत् स्तर से सामूहिक गतिविधियों के मध्य जब संवाद की प्रक्रिया प्रस्फुटित होती है तब इस बात के लिये विशेष बल दिया जाता है जिससे चिन्तन धारा पूर्णतः सकारात्मक दिशा में गतिशील हो सके और परिणाममूलक स्थितियाँ इतने सबल स्वरूप में प्रकट हो जायें कि मानवता का बोध श्रेष्ठता के विकल्प का आधार सिद्ध हो सके।

सृजनात्मक सहयोग – मनुष्य की प्रकृति से जुड़े प्रश्नों का समाधान कर्म जगत् के व्यवहार में ढूढ़ने के लिये किस प्रकार के प्रयास की आवश्यकता होती है यह बात भाग्योदय की सैद्धांतिक पृष्ठभूमि में कई बार परिलक्षित हुआ करती है। स्वयं को विकसित अवस्था तक पहुँचाने के सफलतम् पुरुषार्थ का आँकलन करने पर यह ज्ञात हो जाता है कि व्यक्तिगत् जीवन की संरचना किसी भी परिस्थिति में उँचा उठना चाहती है। चिन्तन की उर्ध्वगामी स्थितियों के मध्य निजी जीवन की उपस्थिति इस सत्य का प्रमाण होती है कि अन्तःकरण की भावनात्मक मनोदशा श्रेष्टता के प्रति सम्पूर्ण समर्पण के लिये पूर्णतया तत्पर है। जीवन के विविध पक्षों में मंगलकारी अनुभूतियों का प्रकट भाव सदैव इस वास्तविकता की स्मृति प्रदान करने में सक्षम होता है जिसके अन्तर्गत् श्रेष्ठ कर्म का प्रतिफल पवित्र स्वरूप में प्रेरणादायी सम्बोधन का आधार बन जाया करता है। सकारात्मक मनोभाव की उत्पत्ति से सम्बन्धित स्थितियाँ जब भावनात्मक जुड़ाव को स्थापित करने में समर्थ हो जाती हैं तब सृजनात्मक सहयोग का मार्ग स्वतः ही प्रशस्त होने लगता है।

आनंद के पवित्र क्षणों में यह सुनिश्चित करना सहज हो जाता है कि जीवन को श्रेष्ठता के प्रति नैसर्गिक रूप से आबद्ध कर दिया जाये क्योंकि आत्मिक स्वरूप की सात्विक अभिव्यक्ति स्वतंत्रता से स्वधर्म की ओर अभिमुखित हो जाने के लिये अवतरित हुआ करती है। व्यक्तिगत् जीवन की सर्वोत्तम अवस्था के लिये सम्पूर्ण त्याग की प्रस्तुती पवित्रता के सानिध्य को सदा बनाये रखना चाहती है जिसमें आत्म साक्षात्कार की स्थितियाँ निरंतर बनी रहें। स्वयं के उत्थान के लिये सकारात्मक चिन्तनशील प्रयासों की श्रृंखलायें जब उत्सर्ग की उच्च सीमाओं तक अपनी उपस्थिति सुनिश्चित कर देती हैं तब ज्ञान, ध्यान, सेवा एवं धारणाओं का परिणाम सार्थक स्वरूप में प्राप्त हो जाया करता है। जीवन के परिष्कार को जिम्मेदारी के साथ निभाने की सोच व्यक्ति को श्रेष्ठता की दृष्टि में अग्रसर कर देती है जिसकी परिणिति समाज में महामानव के रूप में परिलक्षित हुआ करती है। अतः मानव के व्यापक स्वरूप को आत्मा की पवित्रता से सम्बद्ध कर सृजनात्मक सहयोग द्वारा सकारात्मक मनोभाव के सानिध्य को आत्म साक्षात्कार की उच्च स्थितियों के लिये बनाये रखना चाहिए जिससे श्रेष्टता के प्रति नैसर्गिक जुड़ाव को सदैव निर्मित रखा जा सके।